भगवान्‌की पूजाके पुष्प

(कल्याण-कुञ्ज भाग-२)

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

हनुमानप्रसाद पोद्दार

परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार (भाईजी)
(17 September 1892 - 22 March 1971)

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

भगवान्‌की पूजाके पुष्प

(कल्याण-कुंज भाग-२)

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

हनुमानप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीहरिः ॥

'शिव' का निवेदन

मन तरंगोंका समुद्र है। 'शिव' के मनमें भी अनेक तरंगें उठती हैं, उन्हींमेंसे कुछ तरंगें लिपिबद्ध भी हो जाती हैं और उन्हीं अक्षराकारमें परिणत तरंगोंका यह एक छोटा-सा संग्रह प्रकाशित हो रहा है। इस संग्रहमें पुनरुक्ति और क्रमभंग दोष दिखायी देंगे, तरंगें ही जो ठहरीं। यह सत्य है कि तरंगोंके पीछे भी एक नियम काम करता है और वहाँ भी एक नियमित क्रमधारा ही चलती है, परन्तु उसे हम अपनी इन आँखोंसे देख नहीं पाते। हमें तो हवाके झोंकोंके साथ-साथ तरंगोंके भी अनेकों क्रमहीन और अनियमित रूप दीख पड़ते हैं। सम्भव है सूक्ष्मदृष्टिसे देखनेवाले पुरुषोंको इस तरंग-संग्रहमें भी किसी नियमका रूप दिखायी दे। 'शिव' को इससे कोई मतलब नहीं। 'शिव' ने तो प्रकाशकोंके कहनेसे इतना ही किया है कि इधर-उधर बिखरे वाक्योंको एकत्रकर उनपर कुछ शीर्षक बैठा दिये हैं। पाठकोंका इससे कोई लाभ या मनोरंजन होगा या नहीं इस बातको 'शिव' नहीं जानता।

यह पहले भागका निवेदन है। इसी निवेदनके साथ यह दूसरा भाग प्रकाशित हो रहा है।

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

॥ श्रीहरिः ॥

भगवान्‌की पूजाके पुष्प

भगवान्‌की पूजाके लिये सबसे अच्छे पुष्प हैं—श्रद्धा, भक्ति, प्रेम, दया, मैत्री, सरलता, साधुता, समता, सत्य, क्षमा आदि दैवी गुण। स्वच्छ और पवित्र मन-मन्दिरमें मनमोहनकी स्थापना करके इन पुष्पोंसे उनकी पूजा करो।

जो इन पुष्पोंको फेंक देता है और केवल बाहरी फूलोंसे भगवान्‌को पूजना चाहता है उसके हृदयमें भगवान् आते ही नहीं, फिर पूजा किसकी करेगा?

× × × ×

याद रखो—जगत् क्षणभंगुर है, हम सब मौतके मुँहमें बैठे हैं, पता नहीं कालदेवता कब किसको अपने दाँतों-तले दबाकर पीस डालें। अतएव निरन्तर सावधान रहो, किसीको दुःख न पहुँचाओ, सबके सुखके कारण बनो, सबका मंगल चाहो, सबका हित करो, भगवान्‌में प्रेम करो और शुद्ध व्यवहारसे अपने स्वामी भगवान्‌के प्रति लोगोंमें श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न करनेका प्रयत्न करो।

× × × ×

कभी निराश मत हो। यह निश्चय रखो, तुम्हारी आत्मशक्ति भी उतनी ही है, जितनी संसारके बहुत बड़े-बड़े महापुरुषोंमें थी। निश्चय, विश्वास और साधनसे आत्मशक्तिका विकास करो। यदि तुम्हारा निश्चय दृढ़ हो, विश्वास अटल हो और साधन नियमित और नित्य हो तो इसी जन्ममें तुम ऊँचे-से-ऊँचे ध्येयको प्राप्त कर सकते हो। अपनी शक्तिहीनताको देखकर उत्साह न छोड़ो। परमात्मा अनन्तशक्ति हैं और अपनी शक्ति तुम्हें प्रदान करनेके लिये तैयार हैं। निश्चय और विश्वासके बलपर उस शक्तिको ग्रहण करनेकी तुम्हारी स्थिति होनी चाहिये। यह स्थिति तुम अर्जन कर सकते हो।

× × × ×

शास्त्रोंकी कोई बात समझमें न आवे तो उसपर अविश्वास न करो। संसारकी सभी बातें सबकी समझमें नहीं आ सकतीं। यदि दैवी सम्पत्तिके विकासमें बाधा होती हो तो उस बातको काममें न लाओ। अपनेको अनधिकारी समझो। दैवी सम्पत्ति बढ़ती हो तो न समझमें आनेपर भी उस बातको मानकर उसे काममें लाओ। तुम्हारा अकल्याण नहीं होगा।

योगका अर्थ

योगका यथार्थ अर्थ समझो। वह अर्थ है—'श्रीभगवान्‌के साथ युक्त हो जाना,' 'भगवान्‌को यथार्थमें पा लेना' या 'भगवत्प्रेमरूप अथवा भगवद्रूप हो जाना'। यही जीवका परम ध्येय है। जबतक जीव इस स्थितिमें नहीं पहुँच जायगा, तबतक न उसको तृप्ति होगी, न शान्ति मिलेगी, न भटकना बन्द होगा और न किसी पूर्ण, नित्य, सनातन, आनन्दरूप तत्त्वके संयोगकी अतृप्त और प्रच्छन्न आकांक्षाकी ही पूर्ति होगी। इस पूर्णके संयोगका नाम ही योग है अथवा इसको पानेके लिये जो जीवका विविधरूप सावधान प्रयत्न है, उसका नाम भी योग है। यह पूर्णकी प्राप्तिका प्रयत्न जिस क्रियाके साथ जुड़ता है, वही योग बन जाता है। कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, ध्यानयोग, सांख्ययोग, राजयोग, मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग आदि इसीके नाम हैं; परन्तु यह याद रखो कि जो कर्म, ज्ञान, भक्ति, ध्यान, सांख्य, मन्त्र, लय या हठकी क्रिया भगवन्मुखी नहीं है, वह योग नहीं है, कुयोग है और उससे प्रायः पतन ही होता है।

अतएव इन सब योगोंमेंसे, जिसमें तुम्हारी रुचि हो, उसीको भगवत्प्राप्तिका मार्ग मानकर सादर ग्रहण करो। ये सब योग भिन्न-भिन्न भी हैं और इनका परस्पर मेल भी है। यों तो किसी भी योगमें ऐसी बात नहीं है कि वह दूसरेकी बिलकुल अपेक्षा न रखता हो, परन्तु प्रधानता-गौणताका अन्तर तो है ही। कुछ योगोंका सुन्दर समन्वय भी

है। गीतामें ऐसा ही समन्वय प्राप्त होता है। केवल शरीर, केवल वाणी, केवल मन, केवल बुद्धि आदिसे जैसे कोई काम ठीक नहीं होता, इसी प्रकार योगोंके विषयमें भी समझो।

हाँ, इतना जरूर ध्यान रहे कि जिन योगोंमें मनका संयोग होनेपर भी (जैसे नेति, धौति आदि षट्कर्म; बन्ध, मुद्रा, प्राणायाम, कुण्डलिनी-जागरण आदि) शारीरिक क्रियाओंकी प्रधानता है अथवा मन्त्र-तन्त्रादिसे सम्बन्धित देवविशेषकी पूजा-पद्धति मुख्य है, उनमें अज्ञान, अविधि, अव्यवस्था, अनियमितता होनेसे लाभ तो होता ही नहीं, उलटी हानि होती है। भाँति-भाँतिके कष्टसाध्य या असाध्य शारीरिक और मानसिक रोग हो जाते हैं। अतएव ऐसे योगोंकी अपेक्षा भक्तियोग, निष्काम कर्मयोग, ज्ञानयोग आदि उत्तम हैं, ये अपेक्षाकृत बहुत ही निरापद हैं। इनमें भी अनुभवशून्य लोगोंकी देखा-देखी अविधि करनेसे हानि हो सकती है; अतएव शान्त, शीलवान्, शास्त्रज्ञ एवं अनुभवी गुरुकी—पथप्रदर्शककी सभी योगोंमें अत्यन्त आवश्यकता है।

परन्तु अध्यात्ममार्गका पथप्रदर्शक या गुरु सहज ही नहीं मिलता। भगवत्कृपासे ही अनेक जन्मार्जित पुण्य-पुंजके फलस्वरूप अनुभवी और दयालु सद्गुरु मिलते हैं। हर किसीको गुरु बना लेनेमें तो बहुत ही खतरा है। आजकल देशमें गुरु बननेवालोंकी भरमार है। यथार्थ वस्तुस्थिति यह है कि आज अनेकों लुच्चे-लफंगे, काम और लोभके गुलाम साधु, योगी, ज्ञानी और महात्मा बने फिरते हैं। इन्हींके कारण सच्चे साधुओंकी भी अनजान लोगोंमें कद्र नहीं रही। दूधका जला छाछको भी फूँक-फूँककर पीता है, यह प्रसिद्ध कहावत चरितार्थ हो रही है। ऐसा होना अस्वाभाविक भी नहीं है, क्योंकि आज साधुवेशमें फिरनेवाले लोगोंमें व्यसनी, कामी, क्रोधी, लम्पट, दुराचारी मनुष्य या पेशेवर धन कमानेवाले लोग बहुत हो गये हैं। लोगोंको ठगनेके लिये बड़ी-बड़ी बातें बनानेवाले और चालाकीसे भोले-भाले लोगोंको झूठी सिद्धिका चमत्कार दिखानेवाले अथवा कहीं एकाध मामूली सिद्धिके द्वारा लोगोंमें अपनेको परम सिद्ध साबित करनेवाले

लोगोंकी आज कमी नहीं है। आज हठयोगमें अपनेको सिद्ध माननेवाले लोग रोगी, ज्ञानयोगमें सिद्ध माननेवाले कामी, क्रोधी या मानी, लययोगमें सिद्ध माननेवाले शरीरकी नाडियोंसे और आभ्यन्तरिक अवयवोंसे अनभिज्ञ, भक्तियोगमें अपनेको परम भक्त बतानेवाले विषयी और मन्त्रयोगमें अपनेको सिद्ध प्रसिद्ध करनेवाले सर्वथा असफल पाये जाते हैं और इसपर भी अपनी मान-प्रतिष्ठा जमाने या कायम रखनेके लिये सिद्धाईका दावा करते देखे जाते हैं। ऐसे लोगोंसे साधकको सदा सावधान ही रहना चाहिये।

इसका यह तात्पर्य नहीं कि आज सच्चे सिद्धिप्राप्त पुरुष हैं ही नहीं। हैं, अवश्य हैं; परन्तु लोगोंके सामने अपनेको सिद्ध-प्रसिद्ध करके जान-बूझकर आसक्ति और स्वार्थवश कामिनी-कांचन या मान-सम्मान चाहनेवाले लोगोंमें तो कदाचित् ही कोई सच्चे सिद्ध होंगे। सिद्धिप्राप्त पुरुषोंसे हमारा मतलब पातंजलोक्त अष्टसिद्धियाँ या अन्यान्य प्रकारकी सिद्धियोंको प्राप्त पुरुषोंसे नहीं है। किसी भी मार्गसे शेष सीमातक पहुँचकर जो भगवान्‌को प्राप्त कर चुके हैं, उन्हीं महापुरुषोंसे हमारा अभिप्राय है। ऐसे महापुरुष यौगिक सिद्धियोंकी और चमत्कारोंकी कोई परवा नहीं करते। वास्तवमें सिद्धियाँ परमार्थके मार्गमें बाधक ही होती हैं। जिसकी चित्तवृत्ति भगवान्‌की ओर नहीं लगी है और जिसमें थोड़ी भी विषयासक्ति बची है, ऐसा पुरुष यदि किसी साधनसे सिद्धियाँ पा जायगा तो इससे उसका अभिमान बढ़ जायगा, विषयोंकी प्राप्ति और उनके भोगमें सिद्धियोंका प्रयोग होगा; जिनसे भोगोंमें बाधा पहुँचानेकी आशंका या सम्भावना होगी, चाहे वह भ्रमवश ही हो, उनको वैरी समझा जायगा और उनके विनाशमें सिद्धियोंका उपयोग किया जायगा। परिणाममें वह साधक रावण और हिरण्यकशिपु आदिकी भाँति असुर और धीरे-धीरे राक्षस बन जायगा। अवश्य ही सिद्धियोंको पानेपर भी उनमें न रमकर, उन्हें तुच्छ मानकर लाँघ जानेवाला पुरुष भगवान्‌को पा सकता है। परन्तु ऐसा होना है बड़ा ही कठिन। अतएव परमार्थके साधकगण ब्रह्मलोकतकका भोग और

ब्रह्मातककी सामर्थ्य प्रदान करनेवाली सिद्धियोंसे भी अलग ही रहना चाहते हैं।

सच्ची सिद्धि तो अन्तःकरणकी वह शुद्ध स्थिति है, जिसमें भगवान्‌के सिवा दूसरेको स्थान ही नहीं रह जाता। ऐसी शुद्ध-अन्तःकरणरूप सिद्धिको प्राप्त करके और फिर उसके द्वारा साधन करके जो भगवान्‌को प्राप्त कर लेते हैं, वे ही परम सिद्ध हैं। यह परम सिद्धि प्राप्त होती है अन्तःकरणकी सम्यक् प्रकारसे शुद्धि होनेपर ही, फिर चाहे वह शुद्धि किसी भी योगरूप उपायसे हुई हो। ऐसे परम सिद्ध महात्मा भी मिल सकते हैं; परन्तु उन्हें प्राप्त करनेके लिये हृदयमें लगन होनी चाहिये। सच्चे सत्संगके लिये जब हृदयमें छटपटाहट पैदा हो जायगी, जब संत-मिलनके लिये प्राण व्याकुल हो उठेंगे, जब योग-जिज्ञासारूपी अग्नि प्रबल और प्रचण्ड होकर हृदयमें छिपे हुए चोरोंको भस्मीभूत कर देगी और अपने प्रखर प्रकाशसे विषय-अभिलाषारूपी तमका नाश कर देगी और सारे प्रपंचको जलाती हुई दौड़ेगी भगवान्‌की ओर, तब भगवान् स्वयं व्याकुल होकर उसे बुझानेके लिये संतरूपी मेघ बनकर अमृत-वर्षा करेंगे।

एक महानुभाव ढोंगी नहीं हैं, उनके मनमें कामिनी-कांचन या मानका लोभ भी नहीं है, अच्छे शास्त्रज्ञ भी हैं, परन्तु साधन करके परम तत्त्वको पहचाने और पाये हुए नहीं हैं। योगग्रन्थोंके पण्डित हैं, परन्तु साधक या सिद्ध योगी नहीं हैं। ऐसे पुरुषका संग करनेसे शास्त्रज्ञान तो हो सकता है। ग्रन्थीय विद्याप्राप्तिके लिये ऐसे सज्जनको अवश्य गुरु बनाना चाहिये और इसकी आवश्यकता भी है। क्योंकि ग्रन्थीय विद्या क्रियात्मिका विद्यामें बहुत सहायक होती है। परन्तु ऐसे गुरुसे पढ़कर साधना करना—क्रियात्मक योग साधना विपद्‌से शून्य नहीं है। इससे हानिकी बड़ी सम्भावना है। जब वैद्यक और इंजीनियरी आदिमें भी केवल पुस्तकज्ञानसे काम नहीं चलता, अनुभवी गुरुकी आवश्यकता होती है, तब योग-सरीखा साधन केवल पुस्तकज्ञानके आधारपर करना तो बहुत ही भयकी बात है।

अनुभवी गुरुसे जानकर भी यदि साधक उनकी बतायी हुई प्रत्येक बातको नहीं मानता तो उसे भी सफलता नहीं हो सकती। बल्कि किसी-किसी प्रसंगमें तो उलटा नुकसान हो जाता है। अतएव यदि योगसाधना करनी हो तो पहले चित्तमें दृढ़ निश्चय करो फिर गुरुको खोजो और भगवत्कृपासे गुरु मिल जायँ तब उनकी एक-एक छोटी-से-छोटी बातको भी महत्त्वपूर्ण और परम-आवश्यक समझकर श्रद्धापूर्वक उनका अनुसरण करो।

एक बात और है; सभी साधनोंका लक्ष्य मोक्ष या भगवत्प्राप्ति है। सारे ही योगोंकी गति उस एक ही परम योगकी ओर है। फिर ऐसा योग क्यों न साधना चाहिये, जिसमें रुकने या गिरनेका डर न हो, मार्गमें कष्ट भी न हो, जो सरल, सहज हो और इसी जीवनमें लक्ष्यतक पहुँच जानेका निश्चय हो, ऐसा योग है शरणागति-योग! भगवान्का अनन्य आश्रय लेकर श्रद्धा-विश्वासपूर्वक भगवान्का सतत स्मरण करते हुए अपने जीवनके भगवत्-अनुकूल सभी कर्मोंके द्वारा उन्हींकी पूजा करना और जीवनको उनके समर्पण कर निश्चिन्त हो जाना, यही शरणागति योग है। और सभी योगोंमें विघ्न हैं, परन्तु यह सर्वथा निर्विघ्न है। अतएव इसीको परम साधन समझकर इसीमें लग जाओ।

संत-महात्माओंकी सेवा कैसी हो?

महात्माओंकी, साधु-संन्यासियोंकी, गुरुओंकी सेवा-पूजा श्रद्धा-भक्तिपूर्वक करो, परन्तु करो उनके स्वरूपके अनुरूप ही। जो जिस स्थितिमें है, उसकी सेवा-पूजा उसी स्थितिके अनुसार करनी पड़ती है। संन्यासीके सिरपर राजमुकुट और राजाकी कमरमें कौपीन अस्थानीय और अशोभनीय होते हैं। यथायोग्य सेवा-पूजासे ही मर्यादा रहती है और उसीसे दोनों ओर कल्याण है। ऐसी सेवा-पूजा न करो जिससे उनके महत्त्वपूर्ण स्वरूपका अपमान हो, उनके त्यागमय वेषपर कलंक

लगे, उनकी साधना-सम्पत्ति नष्ट होनेका डर हो, उच्च स्थितिसे गिरनेकी आशंका हो अथवा उनकी देखा-देखी करनेवाले दूसरे लोगोंके पतनकी सम्भावना हो।

× × × ×

पितामह भीष्म शरशय्यापर पड़े थे। तमाम शरीरमें बाण बिंधे थे, परन्तु उनके मस्तकमें बाण न लगनेसे सिर नीचे लटक रहा था। भीष्मने तकिया माँगा। लोग दौड़े और नरम-नरम रूईसे भरे कोमल तकिये ला-लाकर उनके सिरके नीचे रखने लगे। भीष्मने उन सबको लौटा दिया, कहा—'अर्जुनको बुलाओ!' अर्जुन आये। भीष्मने कहा—'बेटा! सिर नीचे लटक रहा है, तकलीफ हो रही है, तकिया दो।' चतुर अर्जुनने तुरन्त तीन बाण मस्तकमें मारकर वीरवर भीष्मकी स्थितिके अनुकूल तकिया दे दिया। पितामहने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया; क्योंकि अर्जुनने जैसी शय्या थी वैसा ही तकिया दिया। उस समय महावीर भीष्मको आराम पहुँचानेकी इच्छासे उन्हें रूईका तकिया देना उन्हें कष्ट पहुँचाना था, उनके स्वरूपका अपमान था, उनके शूरत्वका उपहास था और था उनकी महिमाके प्रति अपना मोह—अज्ञान।

× × × ×

इसी प्रकार साधु-महात्मा और विरक्त संन्यासियोंको उनके स्वरूप, धर्म, निष्ठा और साधनाके प्रतिकूल उन्हें आराम पहुँचानेके मोहसे भोगपदार्थोंको अर्पण करनेमें उनकी सेवा समझना उनका तिरस्कार करना है, उन्हें कष्ट पहुँचाना है। 'शिव' से एक बार एक महात्माने कहा था कि हम गृहस्थोंके घर इसलिये जाना पसंद नहीं करते कि वे अपनी स्थितिके साथ हमारी तुलना करके अपनी दृष्टिसे हमें आराम पहुँचानेकी चेष्टा करते हैं, जो हमारे लिये कष्टदायक होनेके साथ ही हमारे आदर्शके नष्ट करनेमें कारण होती है।

तितिक्षा, तप, त्याग, वैराग्य और ज्ञानमें ही उन आत्माराम महात्माओंके लिये सबसे बड़ा आराम है। आत्मसंतुष्टि ही उनके लिये

परम सुख और आत्मतृप्ति ही परम तृप्ति है। ऐसे लोगोंके सामने भोग-सामग्री रखकर उसकी ओर उनका मन खींचनेकी चेष्टा करना उनके स्वरूपको न समझकर उनका उपहास करना है।

× × × ×

यद्यपि सिद्ध-महात्माओंके लिये भोग और त्याग समान ही हैं, क्योंकि वे तो नित्य अखण्ड समतामें स्थित हैं तथापि संन्यासका आदर्श स्वरूप तो वैराग्य और त्याग ही है। सेवकोंको इस आदर्श स्वरूपकी रक्षामें सहायक होकर उनकी यथार्थ सेवा करनी चाहिये। ऐसा न करनेसे आदर्श नष्ट होगा। दूसरे, साधारण लोग बड़ोंकी ही नकल किया करते हैं। संन्यास-आश्रमी विरक्त महात्मालोग प्रकट या अप्रकटरूपसे स्वच्छन्दतापूर्वक (सेवकोंको प्रसन्न करनेके लिये ही) विषयी पुरुषोंकी भाँति भोग भोगने लगें तो यद्यपि अहंकार और आसक्तिका अभाव होनेसे सिद्ध-महात्माओंकी कोई हानि नहीं होती तथापि त्यागमय संन्यासका आदर्श तो बिगड़ता ही है। इसका परिणाम यह होगा कि अपरिपक्व स्थितिके सरल साधक विरक्त महात्माओंका अनुकरण कर अपने साधनपथमें भोगासक्तिका एक प्रबल प्रतिबन्धक खड़ा कर लेंगे, जिससे उनकी प्रगति रुक जायगी और भोगासक्त ढोंगी लोगोंको तो अपने स्वार्थसाधनका सुअवसर ही मिल जायगा। वे तो उन महात्माओंका नाम ले-लेकर अपने दोषोंका समर्थन करने लगेंगे। जिसका परिणाम उनका और उनके संगी-साथी सभीका अकल्याण होगा।

× × × ×

लड़ाईके मैदानमें रणोन्मत्तता उत्पन्न करनेवाले जुझाऊ बाजोंकी जगह सितारका सुर निकाला जाय या मुरलीकी मधुर तान छेड़ी जाय, सोहनी या विहागका राग अलापा जाय, नाना प्रकारके शरीरसुखके पदार्थोंको उपस्थित करके चित्तको विचलित किया जाय अथवा घरवालोंकी दुर्दशाका चित्र खींचकर उनमें ममता जाग्रत् की जाय तो इससे जैसे रणबाँकुरे वीरका भी युद्धसे विमुख होना सम्भव है, वैसे ही त्यागके मार्गपर चलनेवाले

त्यागी साधकोंके सामने उन्हें आराम पहुँचानेके खयालसे बार-बार भोगमय प्रपंचकी चर्चा करना और भोग-आरामकी चीजें दे-देकर उनके चित्तको लुभाना, उन्हें त्यागके पवित्र पथसे गिरानेमें सहायक होता है।

× × × ×

'शिव' को ऐसे कई साधकोंका पता है, जो पहले बड़े त्यागी थे; परन्तु शिष्यों और सेवकोंने मोहवश उनके त्यागके आदर्शको नष्टकर उन्हें अपूज्य बना दिया। जिन महानुभावोंको किसी दिन कुछ भी संग्रह रखना अखरता था, वे ही एक दिन शरीरके आरामके लिये तुच्छ भोग-सामग्रियोंके संग्रहके लिये चिन्तित हो गये! यहाँतक हुआ, आदत यहाँतक बिगड़ी कि अब भोग-सामग्री न मिलनेपर उनके चित्तमें क्षोभ होने लगा और वे शिष्यों और सेवकोंसे उनके लिये ताकीद करने लगे। शिष्य और सेवक भी तभीतक श्रद्धापूर्वक देते हैं, जबतक लेनेसे नफरत की जाती है! जो निःस्पृही पुरुष लेनेसे मुँह मोड़े रहते हैं, उन्हींको देनेके लिये दुनिया पीछे-पीछे फिरा करती है। जहाँ हाथ फैलाया, वहीं देनेवालोंकी भी पीठ दिखायी देती है। फिर तो याचना करनी पड़ती है, अपना दुःख सुनाकर, अपना भाव बताकर दाताके मनमें दया उत्पन्न करनी पड़ती है। श्रद्धासे दया आती है, परंतु दया भी अधिक दिन नहीं ठहर पाती। अतएव फिर यदि कुछ दिया जाता है तो वह अश्रद्धासे भार समझकर, आफत मानकर, मनमें दुःख पाकर, जो सर्वथा राजस दान होता है, इसके बाद तो वह तामसिकतामें परिणत हो जाता है जिससे सेव्य और सेवक—दाता और गृहीता दोनोंकी अधोगति होती है—**'अधो गच्छन्ति तामसाः'**।

× × × ×

'शिव' यह नहीं कहता कि सेवा न करो, सेवा अवश्य करो, भक्तिपूर्वक करो, योग्य अवसर प्राप्त होनेपर सर्वस्व अर्पण करनेके लिये भी तैयार रहो। उत्तम-से-उत्तम वस्तुको उनकी एक जबानपर लुटा दो। परंतु अपने अज्ञानसे, मोहसे, सच्चे साधुओंको आराम पहुँचानेके नामपर उन्हें तंग न

करो, उन्हें कष्ट न पहुँचाओ, उनके आदर्शको नष्ट करनेका प्रयास न करो। उनमें त्यागका जो परम आकर्षण है, जिससे खिंचकर सहस्रों नर-नारी उनकी सेवामें आते हैं और अपने कल्याणका पथ प्राप्त करते हैं, उस त्यागके आकर्षणको नष्ट न करो।

× × × ×

इसी प्रकार तुम्हारा कोई भी सम्बन्धी, भाई, पुत्र, मित्र यदि संयमका आदर्श ग्रहण करे तो मोहवश उसे आराम पहुँचानेकी चेष्टासे संयमके पवित्र पथसे लौटाकर भोगके नरकप्रद पथपर मत लाओ। भोगमें आरम्भमें सुख दीखता है; परंतु उसका परिणाम बहुत ही भयानक है और त्याग यद्यपि पहले भीषण लगता है परंतु उसका फल बहुत ही मीठा है। असली भोग—सच्चे सुखका भोग, दिव्य जीवनका भोग तो इस त्यागसे ही मिलता है, इन्द्रियोंके तुच्छ विषयभोगोंके त्यागसे वह दुर्लभ भोग मिलता है, वह परमानन्द मिलता है, जिसमें कहीं कोई विकार, अभाव, अपूर्णता या विनाश नहीं है। जो नित्य है, सत्य है, सनातन है, ध्रुव है, अपरिणामी है, अनन्त है, असीम है, अकल है, अनिर्देश्य है, अनिर्वचनीय है। यह भोग प्राप्त होनेपर फिर भोग और भगवान्‌में भेद नहीं रहता। वस्तुतः ये एक ही वस्तुके दो नाम हैं।

संत-महात्माकी कृपाका फल

महात्मा पुरुषोंकी सेवा या संगति करके यह इच्छा न करो कि मेरा अमुक सांसारिक काम सफल हो जाय और यदि कोई काम सफल हो भी जाय तो यह मत मानो कि यह महात्माकी कृपासे सफल हुआ है। सच्चे महात्माकी कृपाका फल बहुत ही ऊँचा और अविनाशी नित्य-सत्य वस्तुकी प्राप्ति होता है। अनित्य और विनाशी वस्तुओंकी ओर महात्माओंका लक्ष्य ही नहीं जाता।

यह बात नहीं कि महात्माकी कृपासे सांसारिक लाभ नहीं हो

सकता, परंतु महात्माकी कृपाको सांसारिक कार्यके लिये उपयोग करनेकी चेष्टा करना पारसके मोल कूड़ा खरीदने-जैसा है। बल्कि यह इससे भी नीची श्रेणीका काम है। यह तो महात्माकी कृपाके महत्त्वको घटाना है।

बुरे आचरणों और मानसिक दुष्ट भावनाओंका विनाश तथा दैवी सम्पत्तिकी प्राप्ति महात्माओंके संगसे होनी ही चाहिये और उनकी कृपाका आश्रय करनेपर तो उस नित्य सत्य आनन्दमय स्थितिकी प्राप्ति हो जाती है जिसको '**सत्यं शिवं सुन्दरम्**' कहते हैं और जिसके पानेके बाद कुछ पाना शेष नहीं रह जाता।

सच्चे महात्मा पुरुषोंका संग करनेवाले पुरुषोंमें तथा उनके अनुयायियोंमें शुद्ध आचरणका होना उतना ही आवश्यक है जितना सूर्यके सामने रहनेपर प्रकाश और गरमीका! ऐसी बात नहीं हो तो यह समझ लो कि या तो सच्चे महात्माका अभाव है या तुम उसके संगी अथवा अनुयायी नहीं हो।

संगी वह है जो महात्माके आचरणोंका संग करता है और अनुयायी वह है जो उनके कहे अनुसार चलता है। ये दोनों बातें वस्तुतः होनेपर भी आचरणोंमें सुधार न हो तो समझो कि महात्माके महात्मापनमें ही कुछ कमी है।

परंतु इसमें भ्रम रह जाता है। बहुत लोग अपनेको संगी और अनुयायी तो मान लेते हैं, परंतु महात्माकी आज्ञाका पालन तथा उनके शुद्ध आचरणोंका अनुगमन नहीं करना चाहते। ऐसे सिर्फ बातोंके संगी और अनुयायी तो वंचित ही रहते हैं।

× × × ×

बने हुए महात्माओंकी भी कमी नहीं है। महात्मा वही हैं जो भगवान्‌से नित्य युक्त हैं। जिनके अहंकार, ममत्व, आसक्ति और आकांक्षा सब कुछ भगवान्‌के अर्पण हो चुके हैं। जो समता, शान्ति, सन्तुष्टि, तृप्ति, अहिंसा, उदारता, सरलता, गम्भीरता, क्षमा, सहिष्णुता,

सत्य और संयमके मूर्तिमान् स्वरूप होते हैं। जिनका हृदय विषाद, शोक, भय, उद्वेग, चांचल्य, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर, दर्प, अभिमान, दम्भ आदि दोषोंसे सर्वथा रहित होता है। जो हर्ष-विषाद, मान-अपमान, निन्दा-स्तुति, मित्र-शत्रु और प्रिय-अप्रियकी सीमाको लाँघे हुए रहते हैं, जिनका कहलानेवाला तन, मन, धन सब कुछ पर-हितमें लगा रहता है, जो सम्पूर्ण 'पर' को 'स्व' में विलीनकर उस 'स्व' को भी परमात्मामें विलीन कर चुकते हैं।

सच बात तो यह है कि ऐसे महात्माका संग तो दूर रहा, श्रद्धायुक्त चित्तसे उनके स्पर्श, दर्शन, चिन्तन, गुण-कीर्तन, नाम या गुण-श्रवणसे ही अन्तःकरण पवित्र हो जाता है। उनकी चरणधूलिके स्पर्शसे ही चित्तका मल नष्ट हो जाता है। अतएव महात्मा पुरुषोंमें सच्ची श्रद्धा करो, उनका यथार्थ संग करो, उनके सच्चे अनुयायी बनो। फिर तुम भी यथार्थ महात्मा बन जाओगे।

परंतु महात्मा कहलानेकी अभिलाषा कभी न करो; महात्माके चरणोंका अनुसरण करो, महात्माओंके योग्य आचरण करो, महात्मा बनो; यह आकांक्षा कदापि मनमें न उदय होने दो कि लोग मुझे महात्मा मानें या जानें। लोगोंके जानने या माननेका कुछ भी मूल्य नहीं है। असली मूल्य तुम्हारे उत्तम आचरणोंका है। तुम्हारी श्रेष्ठ स्थितिका है।

× × × ×

तुम्हारे अन्दर दोष हैं तो उन्हें छिपानेका प्रयत्न न करो, प्रकट होते हैं तो हो जाने दो। हाँ, सद्‌गुणोंको छिपानेका जरूर यत्न करो, उनके प्रकट होनेमें सकुचाओ। अपने मुँहसे अपने गुणोंको बखान करनेको तो मरणके समान ही समझो।

× × × ×

दूसरेके द्वारा भी अपनी तारीफ सुननेकी इच्छा न करो, उसको विषभरी मिठाई समझो। मनुष्यको बड़ाई बहुत प्यारी लगती है, परंतु जहाँ वह बड़ाईके चक्करमें पड़ जाता है, वहाँ फिर चौरासीके चक्रसे छूटनेकी

आशा चली जाती है। बड़ाई सुननेवाला सदा बड़ाई सुननेका ही अभ्यासी हो जाता है, वह अपनी सच्ची आलोचना भी बरदाश्त नहीं कर सकता। परिणाममें उसे बड़ाईके लिये ही जीवन लगा देना पड़ता है। संसारमें बड़ाई प्राय: उसीकी होती है जो संसारके काँटेपर भारी उतरता है। संसारी काँटेके बाट आजकल अधिकांशमें वही हैं, जिनसे मनुष्य केवल प्रकृतिका ही उपासक बनता है। चेतनसे जड होना चाहता है। सुनो तो साहस करके निन्दा सुनो, निन्दासे घबराओ नहीं। अवश्य ही शास्त्र और आत्माकी ध्वनिके विपरीत कोई निन्दनीय काम तुम कभी न करो। महात्मा पुरुष तो निन्दा-स्तुतिके परे होते हैं, वे समबुद्धि होते हैं। परंतु महात्माओंका पदानुसरण करनेवालोंको पहले निन्दासे प्रेम और स्तुतिसे भय करना पड़ता है। तभी वे आगे चलकर महात्माका पद प्राप्त कर सकते हैं।

परंतु निन्दाके योग्य पापकर्म कभी न करो, पापकर्म करनेवाला महात्मा नहीं बन सकता। सत्कर्म करो। महात्मा पुरुषोंको खोजकर उनके आज्ञानुसार चलो! महात्मा न मिलें तो कम-से-कम उन लोगोंसे तो सदा बचते रहो जो पर-स्त्री, पराये धन और पर-निन्दाके प्रेमी हैं। उन लोगोंका संग भी यथासाध्य छोड़ दो जो विषयी हैं, विलासी हैं, भगवान्‌का भजन छोड़कर जगत्‌की चर्चामें लगे रहते हैं, तर्क और वाद-विवादमें समय बिताते हैं, इन्द्रियोंको तथा शरीरको सुख पहुँचानेके लिये सदा यत्न करते रहते हैं, स्वादिष्ट भोजनके लिये लालायित रहते हैं और मान-सम्मान चाहते हैं।

परन्तु किसीपर दोषारोपण न करो, न अपनेको शुद्धाचारी या त्यागी मानकर अभिमान करो, न किसीसे द्वेष करो। जहाँतक हो अपना समय भजनमें, सत्पुरुषोंकी संगतिमें, भगवान्‌की ओर लगानेवाले ग्रन्थोंके अध्ययनमें, सदाचारी साधु-महात्माओंके जीवनका अनुसरण करनेमें, अभिमान छोड़कर सच्चे भावसे गरीबोंकी सेवा करनेमें और अहंकारसे बचकर अपने वर्णाश्रमधर्मके पालनमें लगाओ।

× × × ×

सावधानीके साथ स्त्री-चर्चा, धन-चर्चा और मान-चर्चासे बचे रहो। कम बोलो, सत्य बोलो, नम्रतासे बोलो और हितकारी वचन बोलो। ऐसा कोई काम न करो, ऐसी कोई बात किसीसे न कहो, जिसके कारण तुम्हें आगे चलकर झूठ बोलनेकी जरूरत दिखायी दे। बिना समझे ऐसी कोई बात मुँहसे मत निकालो जिसके कारण तुम्हें नीचा देखना पड़े। याद रखो—जो दूसरोंको नीचा दिखाना चाहता है, उसे कभी-न-कभी नीचा देखना ही पड़ता है।

× × × ×

सबका सम्मान करो, सबके साथ प्रेम और नम्रतासे व्यवहार करो, अपना दुःख सुनानेकी इच्छा कम रखो, दूसरेका दुःख सुनो और तुम्हारा दुःख बढ़नेसे यदि उसका दुःख मिट सकता हो तो साहस करके उसका दुःख मिटानेकी चेष्टा करो। भगवान् सत्य हैं, सर्वसाक्षी हैं, तुम्हारा दुःख एक बार बढ़ता हुआ चाहे दिखायी देगा, परन्तु परिणाममें तुम्हें बड़ा सुख मिलेगा। ऐसे आचरणोंसे सचमुच तुम महात्मा बन जाओगे।

अध्यात्मविद्या

आजकलकी भाषामें अंग्रेजीमें बी० ए०, एम० ए० आदिकी परीक्षामें पास हो जाना 'उच्च शिक्षा' प्राप्त करना है और इन परीक्षाओंका पाठ्यक्रम जिन संस्थाओंमें पढ़ाया जाता है वे उच्च शिक्षालय या कॉलेज हैं। ऐसे कई कॉलेज जिस संस्थाके अन्तर्गत होते हैं, उसका नाम विश्वविद्यालय या युनिवर्सिटी है। 'उच्च शिक्षा' का सच्चा अर्थ तो यह होना चाहिये कि जिस शिक्षाको प्राप्त करके मनुष्यका हृदय ऊँचा हो जाय। वह उच्च तत्त्वको जान ले, सत्यको पहचान ले और प्राप्त कर ले। सत्यसे वर्जित केवल तर्कशक्तिका विकास करनेवाला ज्ञान 'उच्च शिक्षा' कदापि नहीं है।

इस शिक्षाकी जरूरत है तो इसको भी प्राप्त करो-कराओ, परन्तु इसे भाषाशिक्षा, विज्ञानशिक्षा, कृषिशिक्षा या गणितशिक्षा कहो। कहो नहीं तो, समझो तो ऐसा ही। परन्तु उच्च शिक्षाकी ओर भी जरूर ध्यान दो। वह उच्च शिक्षा है—अध्यात्मविद्या। '**अध्यात्मविद्या विद्यानाम्**' भगवान्के इन वचनोंको याद रखो।

अध्यात्मविद्या भी वह नहीं जिससे केवल 'वेदान्तरत्न' या 'भक्तिकौस्तुभ' की उपाधि ही नामके पीछे लग जाय। अध्यात्मविद्या असली वह है जिससे तुम्हारी मनोवृत्ति ऊँची हो, सत्यको खोजनेकी प्रवृत्ति जाग उठे, सत्यकी ओर मन लगे और सत्यकी उपलब्धि जबतक न हो तबतक यह विद्याभ्यास न छूटे।

याद रखो—अध्यात्मविद्याके बिना तुम सत्यकी ओर अपना मुख नहीं फिरा सकते, सत्यकी ओर तुम्हारी गति नहीं हो सकती और तुम सत्यको नहीं पा सकते और सत्यको पाये बिना मनुष्य-जीवन व्यर्थ है।

इस विद्याका पहला लाभ है—जीवनका संयमित होना। जिसका जीवन असंयत है, जिसका शरीर, इन्द्रियाँ और मन वशमें नहीं हैं, जो इन्द्रियोंका गुलाम है वह कभी सच्चा विद्वान् नहीं कहा जा सकता।

संयमी ही स्वतन्त्र है—चाहे वह शारीरिक बन्धनमें हो और इसके विपरीत किसी भी नियमके अधीन न रहनेवाला यथेच्छाचारी असंयमी पुरुष सर्वथा परतन्त्र है। जिस विद्याका पहला लाभ इस परतन्त्रताकी बेड़ीको काट डालना है, वही अध्यात्मविद्या है। हिन्दुओंके प्राचीन ब्रह्मचर्याश्रमोंमें सर्वप्रथम इसीकी व्यावहारिक शिक्षा दी जाती थी।

इसका दूसरा लाभ है सद्भावों और सद्गुणोंकी प्राप्ति। जो विद्या दुष्टभाव और दुर्गुणोंसे हमारे हृदय और कर्मोंको भर देती है, वह तो अविद्याका ही मोहसे बदला हुआ सुन्दर नाम है। अध्यात्मविद्या हृदयको सद्भावोंसे और आचरणोंको सद्गुणोंसे भर देती है।

इसका तीसरा लाभ है, सत्यकी ओर प्रवृत्त होना। जीवनको सत्यकी खोजमें लगा देना। जो सत्यकी खोजमें लगा है, वही सदाचारी है। सत्य भाषण, सत्य आचार, सत्य व्यवहार उस सत्यकी प्राप्तिके साधन हैं। वह सत्य भगवान्‌का ही नामान्तर है।

और अध्यात्मविद्याका चरम लाभ है परमात्माको पा लेना। यही सब दुःखोंसे सदाके लिये मुक्त करके नित्य सनातन परमानन्द देनेवाली अवस्था है। परमानन्द ही इसका स्वरूप है। इसका कोई भोक्ता नहीं है। यह ज्ञानस्वरूप और चेतन है। यही परम सत्य है।

इस परम सत्यको पाना ही मनुष्य-जीवनका लक्ष्य है। इस लक्ष्यकी ओर अनन्यदृष्टि रखकर निश्चयात्मिका बुद्धिके द्वारा आगे बढ़ते रहो। इस लक्ष्यको सामने रखकर इसे पानेके लिये जिस विद्याका अध्ययन किया जाता है, वही अध्यात्मविद्या है, वही उच्च शिक्षा है, वही पारमार्थिक शिक्षा है।

अवश्य ही इसमें व्यावहारिक शिक्षाका विरोध नहीं है। व्यवहारके सब कार्य करो और भलीभाँति करो, परन्तु लक्ष्यकी ओर दृष्टि बनाये रखो। लक्ष्य बना रहेगा तो व्यवहार तुम्हारे मार्गका बाधक न होकर सहायक होगा।

परन्तु लक्ष्य बनाने और उसे स्थिर रखनेके लिये भी प्राथमिक शिक्षाकी

आवश्यकता है। उसी शिक्षाका नाम धार्मिक शिक्षा है। अतएव ऐसी चेष्टा करो जिसमें प्रत्येक बच्चेको घरमें और स्कूल-कॉलेजोंमें धार्मिक शिक्षा अवश्य मिले, जिससे उनका लक्ष्य ठीक हो और वे व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करते समय भी लक्ष्यपर स्थिर दृष्टि रख सकें!

भगवान्से यह प्रार्थना करो और आत्मामें निश्चय करो कि हमारा और हमारी सन्तानके लक्ष्य भगवान् रहें। हम भगवान्के लिये ही सब काम करें, भगवान्के ही लिये जियें और अन्तमें भगवान्के लिये भगवान्का स्मरण करते हुए इस नश्वर शरीरको त्यागकर भगवान्के चरणोंमें चले जायँ।

जीवनका एक-एक क्षण प्रभु-स्मरणके लिये है

याद रखो—जीवन बहुमूल्य है; इसका एक-एक क्षण प्रभुके स्मरणके लिये है; अतएव इसे व्यर्थ मत खोओ। एक-एक क्षणको सावधानीके साथ प्रभुके चिन्तन और प्रभुकी सेवामें लगाओ। केवल शरीर और वाणीसे ही नहीं, मनसे भी निरन्तर प्रभुका ही सेवन करो, देखते रहो, सँभाल रखो, चित्तरूपी महलमें चोर न घुस जायँ। जो पहलेसे घुसे बैठे हैं, उन्हें निकालो और आइंदा घुसने न दो।

× × × ×

काम, क्रोध, अभिमान, दम्भ, मोह, ईर्ष्या, असूया, वैर आदि ही प्रधान चोरोंमेंसे हैं। इनमें एक-एकको पहचान लो और लुके-छिपे जहाँ दिखायी दें, तुरन्त निकालनेका यत्न करो! याद रखो—जबतक ये विकार चित्तमें भरे हैं तबतक तुम परमात्मासे बहुत दूर हो।

× × × ×

मनमें प्रभुको बैठाये रखनेकी चेष्टा करो, फिर ये चोर वैसे ही नष्ट

हो जायँगे, जैसे सूर्यके प्रकाशमें अँधेरा नष्ट हो जाता है। मनको प्रभुके साथ जोड़ दो—जहाँ प्रभु जायँ वहाँ मन जाय और जहाँ मन जाय वहाँ प्रभु साथ रहें। क्षण-क्षणका हिसाब रखो। एक पलके लिये प्रभुके साथ मनके संयोगको न टूटने दो।

× × × ×

यह मत मानो कि मन बड़ा बलवान् है, यह कैसे प्रभुचरणोंमें बँधा रहेगा। याद रखो—मनकी शक्ति तुम्हारी शक्तिसे बहुत ही कम है और जो कुछ है सो भी तुम्हारी ही दी हुई। तुम मनके मालिक हो, गुलाम नहीं। तुम्हारे ही बलसे यह दुष्ट मन, तुम्हें अपना बल याद न रहनेके कारण दबा बैठा है। हिम्मत करके जरा जोरसे धक्का लगाओ, मन उलटकर तुम्हारी गुलामी स्वीकार कर लेगा। फिर तुम्हें तो प्रभुका असीम बल प्राप्त है। उसपर विश्वास करो। विश्वास करते ही तुम अपनेमें उसे देखोगे। फिर तमाम विरोधी शक्तियोंका बल तुम्हें उस दैवी बलके सामने तुच्छ जान पड़ेगा। फिर अपने-आप ही सब तुम्हारे प्रभुत्वको स्वीकार कर सहायक और सेवक बन जायँगे।

× × × ×

जो इन्द्रियोंके भोगोंमें ही सुख देखता है, वह मनकी गुलामीसे मुक्त नहीं हो सकता। भोगोंमें सुख या आरामकी कल्पनाको निकाल दो। सुख केवल भगवान्‌में ही है और वह भगवान् तुम्हारे अपने हैं। भगवान्‌में सुख देखो, जब वह दिखायी देने लगेगा तब उस सुखके सामने भ्रमसे प्रतीत होनेवाले इन सुखोंका स्वप्न तुरन्त भंग हो जायगा।

× × × ×

संसारमें धर्मशालामें ठहरे हुए मुसाफिरकी भाँति सावधान, अस्थायी तथा सदा चलनेके लिये तैयार होकर रहो। गाफिल मत होओ, चोरोंसे लुट जाओगे। काम-क्रोधरूपी चोर मौका ही ताकते रहते हैं। यहाँके निवासीको स्थायी मत समझो, यह तुम्हारा घर नहीं है, जमकर रहना चाहोगे तो निकाल दिये जाओगे। नाहक दुःख होगा। तैयार नहीं रहे

और गाड़ी खुल गयी तो पछताओगे! फिर यह मनुष्य-देहरूपी गाड़ी सहज ही नहीं मिलेगी। अतएव सावधान!

सच्चे धनी बनो

दूसरोंको चाहे जितना शान्तिका उपदेश दो, सुख-दुःखोंमें सम रहकर आनन्दमग्न रहनेकी चाहे जितनी मीमांसा करो, जबतक तुम्हारा हृदय शान्त नहीं है, जबतक तुम्हारा हृदय आनन्दसे पूर्ण नहीं है, तबतक सब व्यर्थ है। धनी कहलानेसे तो बखेड़ा बढ़ता है। सच्चे धनी बनो, फिर चाहे कोई तुम्हें कंगाल ही क्यों न समझे।

× × × ×

अपना काम बनानेमें जल्दी करो, जीवनके दिन बहुत ही जल्दी-जल्दी बीते जा रहे हैं। परोपदेशमें ही उम्र बिता दोगे तो न तुम्हारा कल्याण होगा और न कोरे जबानी जमाखर्चसे दूसरोंका ही दुःख दूर होगा। पहले धनी बनो, फिर बाँटो। बिना धनी हुए क्या बाँटोगे?

× × × ×

अपने हृदयको सदा पैनी नजरसे देखते रहो, याद रखो—जहाँ तुम्हारा मन है तुम वहीं हो। मन्दिरमें रहो या वनमें, मन यदि कारखानेमें या बाजारमें है तो तुम भी वहीं हो। जिसके मनमें भगवान् बसते हैं, वह भगवान्‌के मन्दिरमें है और जिसके मनमें विषय बसते हैं, वह संसारमें है।

× × × ×

वृत्तियोंको विषयोंसे हटाकर भगवान्‌में लगाओ या जहाँ वृत्ति जाय वहीं भगवान्‌को देखो। पल-पलमें सँभालते रहो, वृत्ति कहाँ है। द्रष्टा बने देखो! फिर वृत्तियाँ स्वतः ही भगवन्मुखी हो जायँगी।

× × × ×

शास्त्रार्थ न करो, विवादमें मत पड़ो, किसीको हरानेकी नीयत न रखो; अपने काममें लगे रहो। अपना भजन, ध्यान, स्मरण, पूजन न

छूटे। शास्त्रार्थमें जीत जाओगे तो अभिमान भर बढ़ेगा। उतनी देर जो बहिर्मुख वृत्ति रहेगी, वह तो बड़ी हानि होगी ही।

× × × ×

जान-पहचान ज्यादा बढ़ानेकी कोशिश न करो; चुपचाप भजन करते रहो। ख्यातिसे प्रपंच बढ़ेगा। परिवार बढ़ेगा, भजनमें बाधा आवेगी! मान-पूजा होने लगेगी और कहीं मान-पूजाको मन स्वीकार कर लेगा, तब तो समझो कि पतनके लिये गड्ढा ही खुद गया।

× × × ×

कम बोलो, कम सुनो, कम देखो, कम मिलो-जुलो, यह सब उतना ही करो जितना अत्यन्त जरूरी है। एक पल भी बिना जरूरत इन कामोंमें मत लगाओ।

× × × ×

घरमें अतिथिकी-ज्यों रहो; कुछ भी अपना मत समझो। सेवा करानेमें संकोच करो; डर-डरकर व्यवहार करो। सबका हित चाहो। किसीको दुःख न पहुँच जाय, इस बातका खयाल रखो। ममता मत बढ़ाओ। अतिथिको घरसे चले ही जाना है, इस बातको याद रखो।

× × × ×

अपने लिये पापको छोड़कर अन्य किसी भी विपत्तिसे न डरो; डरो दूसरोंको संकोचमें डालनेमें, डरो दूसरोंको बाध्य करनेमें, डरो दूसरोंको दुःख पहुँचानेमें, डरो दूसरोंका अहित करनेमें, डरो दूसरोंसे पूजा करवानेमें, डरो दूसरोंसे सेवा करवानेमें, डरो दूसरोंको चरणधूलि देनेमें, डरो दूसरोंसे स्तुति सुननेमें और डरो भगवान्‌को भूलनेमें।

× × × ×

ऐसा प्रयत्न करते रहो कि क्षणभर भी भगवान् न भूल जायँ। वे मनमें, वाणीमें तथा नेत्रोंमें बसे ही रहें। और किसी बातमें भले ही भूल हो जाय, पर इसमें भूल न हो।

× × × ×

साधनमें सन्तोष न करो, सदा आगे बढ़ते ही रहो, देखते रहो आज कितना आगे बढ़े। रुको नहीं। पीछे फिरनेकी तो कभी कल्पना ही मनमें मत उठने दो।

× × × ×

भगवान्‌पर विश्वास रखो, उनकी तुमपर बड़ी दया है, वे सदा तुम्हारे साथ हैं, उनका हाथ सदा तुम्हारे सिरपर है। तुम उनकी प्रत्यक्ष देख-रेखमें हो। वे सदा तुम्हारी खुद सँभाल करते हैं। तुम यह विश्वास कभी मनसे मत हटने दो। फिर उनके कोमल करका स्पर्श पाकर कृतार्थ हो जाओगे।

आधारकी शुद्धि

भगवान् हैं, वे सच्चिदानन्दघन हैं, सर्वत्र हैं, सर्वदा हैं, किसी भी देश-काल-पात्रमें उनका अभाव नहीं है। इतना होनेपर भी उनका अनुभव सबको क्यों नहीं होता? इसीलिये नहीं होता कि उनका तत्त्वस्वरूप अत्यन्त ही पवित्रतम और सूक्ष्मतम है। उस सूक्ष्म तत्त्वको जानने और अवधारण करनेके लिये तुम्हें शरीर, मन और बुद्धिरूप आधारको उसके उपयुक्त बनाना पड़ेगा। जबतक शरीर अशुद्ध है, चित्त चंचल और अपवित्र है और बुद्धि स्थूल एवं व्यभिचारिणी है, तबतक भगवान्‌की यथार्थ अनुभूति नहीं हो सकती। तप, शौच और आचारसे शरीरको शुद्ध करो। सत्संग, भगवन्नाम-जप और भगवद्‌गुणोंके चिन्तनसे चित्तको शुद्ध और संयत करो। परम सत्य एकमात्र परमात्माके स्वरूपके ध्यानसे बुद्धिको सूक्ष्म और अव्यभिचारिणी बनाओ। फिर परमात्माका अनुभव होनेमें—भगवान्‌के दर्शनमें देर नहीं होगी।

इसीलिये आधारकी शुद्धिपर इतना जोर दिया गया है। अशुद्ध आधारसे होनेवाला भगवत्प्रतिष्ठाका साधन यथार्थ आनन्द नहीं देता;

क्योंकि परम शुद्धका प्रतिबिम्ब भी अशुद्धमें नहीं दीखता। साधन करते रहो। श्रद्धापूर्वक साधन करते-करते ज्यों-ज्यों आधार शुद्ध होगा, त्यों-ही-त्यों उसे भगवान्‌के पवित्र निवासस्थान बननेकी योग्यता मिलती जायगी और त्यों-ही-त्यों आनन्द भी आने लगेगा। थोड़े आनन्दके लाभसे फिर अधिक आनन्दकी कामना बढ़ेगी और वह कामना साधनाग्निमें ईंधनका काम देगी।

याद रखो—आधारकी शुद्धि उस परम सत्यकी प्रतिष्ठाके लिये अत्यन्त आवश्यक है। तुम अशुद्ध आधारमें उसकी धारणा करना चाहते हो और जब वह नहीं होती तब आधारकी अपरिणतिकी ओर तो ध्यान नहीं देते, सत्यपर ही सन्देह करने लगते हो। ऐसा न करो। शरीर, मन और बुद्धिको यम-नियमोंके द्वारा शुद्ध करनेके प्रयत्नमें पूर्णरूपसे लग जाओ। जब भगवान् इस आधार-मन्दिरको शुद्ध, स्वच्छ और दैवी गुणोंसे सुसज्जित पायेंगे, तब अपने-आप ही इसमें आ विराजेंगे। अब भी हैं तो सही, परन्तु छिपे हैं। फिर पर्दा हट जायगा और तुम अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे उनका सुख-स्पर्श पाकर निहाल हो जाओगे।

जबतक आधारकी यथायोग्य शुद्धि और परिणति न होगी तबतक उसमें किसी महात्माके द्वारा भी शक्तिसंचार किया जाना बड़ा कठिन है; क्योंकि अशुद्ध और अपरिणत आधारमें शक्तिपात होना सहज नहीं। यदि किया जाता है तो शक्तिको वहाँसे प्रतिहत होकर लौट आना पड़ता है, और बलपूर्वक शक्तिको रखे जानेकी कोशिश होती है तो आधार उसे सहन न करके फटने लगता है, क्लेश बढ़ जाता है। कहीं शक्ति रह जाती है तो उसके निष्फल जानेकी ही नहीं, उससे कुफल होनेकी भी खूब सम्भावना रहती है। जैसे उदरामयके रोगीके लिये घृत विषका काम करता है अथवा ताम्रके पात्रमें बनायी हुई खीर जहर-सी हो जाती है, उसी प्रकार अयोग्य पात्रमें उत्तम वस्तु भी प्रतिकूल फल देनेवाली बन जाती है। इसीलिये महात्मालोग जबतक आधारकी उचित परिणति नहीं देख लेते तबतक उसमें न रह सकने

लायक उत्तम वस्तुको नहीं देते। हाँ, आधारकी शुद्धि और परिणतिके लिये महात्माओंका संग करो और उनकी कृपाका आश्रय ग्रहण करो। महत्पुरुषोंकी कृपासे और उनके आज्ञानुसार आचरण करनेसे आधारकी शुद्धि शीघ्र हो जायगी और आधारकी शुद्धि होनेपर वे सहज ही शक्तिपात कर सकेंगे।

यह भी नहीं समझ लेना चाहिये कि सभी महात्मा शक्तिपात करते हैं या कर सकते हैं। न तो सबका स्वभाव एक-सा होता है और न सबकी शक्तिमें ही समता होती है। कई महात्मा शक्ति होनेपर भी उसको काममें नहीं लाते, कई न्यून शक्तिसे भी काम लेनेकी चेष्टा करते हैं। जिन महात्माओंकी शक्तिपात करनेकी चेष्टा होती है, उनमें कुछ तो ऐसे बहुत बढ़ी हुई शक्तिवाले हो सकते हैं जो आंशिकरूपसे अपरिणत आधारको भी अपनी शक्तिके द्वारा सहज ही शुद्ध करके उसमें शक्ति-स्थापन कर देते हैं। और जिनकी शक्ति कम बलवती होती है वे शुद्ध आधारमें भी बड़ी कठिनतासे शक्तिको पहुँचा सकते हैं। कुछ भी हो, आधारको शुद्ध और परिणत करनेकी चेष्टा प्राणपणसे करते रहो। शुद्ध आधारमें स्वयं ही परमात्मशक्तिका प्रकाश हो जायगा।

धन-स्त्री-मानका मोह छोड़ दो

साधकोंको धनमें ममत्व नहीं रखना चाहिये। धनमें बड़ी मादकता होती है। धनी पुरुषका वास्तविक विनयी होना कठिन हो जाता है। धनके साथ ही कई तरहके दोष और आ जाते हैं जो साधनमें प्रतिबन्धकस्वरूप होते हैं। धनकी प्राप्तिमें लोभ बढ़ता है और अप्राप्तिमें शोक। धनकी चिन्ता तो भगवच्चिन्तनमें बड़ा ही विघ्न करनेवाली होती है। जो कुछ प्राप्त हो उसीमें संतोष करो, अधिक आवश्यकता हो तो न्याय और सत्यका पालन करते हुए प्रयत्न करो। धन पास हो तो उसे भगवान्‌का समझो और यथोचित रूपसे उसे भगवान्‌के काममें लगाओ। यही सदुपयोग है। प्रमाद और परपीड़नमें धनका कभी उपयोग न करो। धनको महत्त्व मत दो। धनका अभिमान मनमें मत आने दो। धनका लोभ न बढ़ाओ। याद रखो—धनका लोभी मनुष्य कभी परमार्थसाधनामें अग्रसर नहीं हो सकता।

× × × ×

साधकोंको स्त्रीसंगसे सदा बचना चाहिये। यहाँ बहादुरी दिखानेकी जरूरत नहीं। जो लोग स्त्रियोंसे मिलते-जुलते हैं, स्त्रियोंमें उपदेश देते हैं, स्त्रियोंकी सभाओंमें जाते हैं, स्त्रियोंके साथ रहते हैं, वे यदि अपने हृदयकी सच्ची स्थिति देखना चाहें और जरा गहराईकी नजरसे देखें तो उन्हें पता लगेगा कि ऊपरसे कोई दोष नजर न आनेपर भी अन्दर एक प्रकारकी कालिमा आ गयी है, जो बाह्य शुद्ध विचारोंसे ढकी है। एक स्वाभाविक-सा आकर्षण है, जो युक्तिवादके सहारेसे किसी भी सदुद्देश्यके बहानेसे स्त्रियोंकी—युवती स्त्रियोंकी ओर चित्तको खींच रहा है। यही आकर्षण जब निरन्तरके संगके प्रभावसे या अन्य किसी कारणवश बढ़ जाता है, तब सदुद्देश्य प्रकाशरूपसे सहसा नष्ट हुआ-सा दीखता है और चित्तके क्षेत्रमें दुर्वासनाओंका नग्न नृत्य आरम्भ हो जाता है। एक निश्चयहीन बुद्धि निर्बल होकर मनपर शासन करनेमें

असमर्थ हो जाती है। फिर बुद्धिकी संरक्षकतासे वंचित और दुर्वासनाओंसे प्रताड़ित मनको इन्द्रियाँ सहज ही खींच लेती हैं। मनुष्यका बाह्य पतन हो जाता है। इसी प्रकार स्त्रियोंको भी पर-पुरुषोंसे सदा बचते रहना उचित है। पुरुष-स्त्रीका स्वच्छन्द मिलन कदापि हितकर नहीं है। यह बात शास्त्र और अनुभव दोनोंसे सिद्ध है, फिर जो आत्मकल्याणके साधनमें लगे हैं, उनको तो विशेषरूपसे सावधान रहना चाहिये।

× × × ×

साधकोंको मानका मोह छोड़ देना चाहिये। जहाँ मान-बड़ाई मिलनेकी सम्भावना हो और जिस कार्यसे मान-बड़ाई मिलती हो वहाँ भरसक उस कामसे अलग रहो या उसे छिपकर करो, जिससे तुम्हें मान-बड़ाई न मिले। मान-बड़ाई मिले तो उसे मनसे कभी स्वीकार न करो। मान-बड़ाईसे मनमें जो आनन्द उत्पन्न होता है, वही मान-बड़ाईका स्वीकार है। ऊपरसे अस्वीकार करना ही अस्वीकार नहीं है! मान-बड़ाई मीठा विष है, जो साधकके साधनशरीरको सर्वथा जर्जर कर डालता है। अतएव मान-बड़ाईसे सदा बचो।

वेदान्त-तत्त्व

वेद कहते हैं अनन्त ज्ञानराशिको। इस सम्पूर्ण ज्ञानका जिसमें पर्यवसान होता है, जिसमें 'अन्त' होता है उसे वेदान्त कहते हैं। इस 'अन्त' का अर्थ विनाश नहीं है। अन्तका अर्थ है सम्पूर्ण ज्ञानराशिका चरम और परम फल। ज्ञानका यह चरम फल ही इसका मूल स्रोत भी है। मतलब यह कि जिससे समस्त ज्ञान निकलता है और जिसमें जाकर मिल जाता है, उसका नाम वेदान्त है। वेदान्त-प्रतिपादित तत्त्व ही यह वेदान्त है। उस तत्त्वका वर्णन वाणीसे नहीं हो सकता, मन वहाँतक नहीं पहुँच सकता, बुद्धि उसका निर्णय नहीं कर सकती। वह अनिर्वचनीय है, अचिन्त्य है।

× × × ×

ऐसे अनिर्वचनीय वेदान्ततत्त्वके सम्बन्धमें वाणीसे कुछ कहना या लेखनीसे उसका प्रतिपादन करने जाना एक प्रकारसे हास्यास्पद ही है। अत: वह कैसा है, क्या है, इस बातको लेकर परस्पर विवाद करनेमें कोई लाभ नहीं। परन्तु अहंकारवश विवाद हो ही जाता है। वेदान्त-तत्त्वको पानेकी जिनकी इच्छा हो, उनको विवादसे जरूर अलग रहना चाहिये।

× × × ×

एक ही सत्यको पानेके अनेक मार्ग हैं। विविध दिशाओंसे उस एककी ओर अग्रसर हुआ जा सकता है; जो जिस दिशामें है, वह अपनी दिशासे ही उसकी ओर चलेगा। सब एक दिशासे नहीं चल सकते; क्योंकि सब एक दिशामें हैं ही नहीं। हाँ, सबका लक्ष्य वह एक ही है, इसलिये अन्तमें सब उस एकहीमें पहुँचेंगे; परन्तु दिशाभेदके अनुसार मार्ग तो भिन्न-भिन्न होंगे ही। तुम जिस मार्गसे चलते हो, वह भी ठीक है और दूसरा जिससे चलता है, वह भी ठीक हो सकता है। तुम्हारा और उसका लक्ष्य तो एक ही है। फिर विवाद किस बातका? इसीलिये अपने मार्गपर चलो, सावधानीके साथ अग्रसर होते रहो, दूसरेकी ओर मत ताको। न किसीको गलत समझो और न अपने निर्दिष्ट मार्गको छोड़ो।

× × × ×

विवाद छोड़कर विचार करो। प्रमाद त्यागकर भजन करो। याद रखो—भगवान्‌का भजन ऐसा कुशल पथ-प्रदर्शक है, जो तुम्हें सदा यथार्थ मार्ग दिखलाता रहेगा। तुम कभी मार्ग भूल नहीं सकोगे।

× × × ×

भजनके साथ साधनचतुष्टयका अभ्यास जरूर करो। विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति (शम, दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा और समाधान) तथा मुमुक्षुत्व—यही चार प्रधान साधन हैं। इनके साथ जो भजन होगा, वह तुम्हें वेदान्तका तत्त्व बहुत ही शीघ्र प्राप्त करानेवाला होगा।

भजनको शुद्ध बनाये रखनेके लिये इन चारोंकी बड़ी ही आवश्यकता है।

× × × ×

सत्संगका श्रद्धापूर्वक सेवन करो, भगवान्‌के पवित्र नामोंका जप और कीर्तन करो, संसारकी असारता और क्षणभंगुरतापर विचार करो, विषयोंके दुःखमय और अनित्य स्वरूपको सोचो और आत्माकी नित्यता और सुखरूपताका अनुभव करो।

× × × ×

आत्मा नित्य है, शुद्ध है, निर्विकार है, अज है, सनातन है, चेतन है और ज्ञानमय है। आत्मा परमात्माका ही स्वरूप है। आत्माको जाननेसे ही परमात्माको जाना जा सकता है और परमात्माको जाननेपर आत्मा और परमात्माका कोई भेद नहीं रह जाता, वह उसमें मिल जाता है। मिलनेका प्रधान साधन है—प्रेम अथवा पराभक्ति और इस प्रेमका प्रादुर्भाव होता है ज्ञानसे। इस ज्ञानके जो साधन परमात्मा श्रीकृष्णने बतलाये हैं, उनका सारांश यह है—

× × × ×

बुद्धिको विशुद्ध करो, एकान्तमें भजन करो, हलका हितकारी थोड़ा आहार करो; मन, वाणी और शरीरको वशमें रखो; संसारके विषयोंसे भलीभाँति वैराग्य करो, नित्य ध्यान करो, सात्त्विकी धृतिसे अन्तःकरणका नियमन करो, शब्दादि विषयोंका त्याग करो, राग-द्वेषको छोड़ो; अहंकार, शरीर, जन और धनके बलका आश्रय, घमंड, काम, क्रोध और परिग्रहका त्याग करो; ममता किसीमें न रखो, चित्तको शान्त करो; तब तुम ब्रह्मस्वरूप आत्माको जाननेके योग्य बनोगे।

'फिर ब्रह्ममें तुम्हारी स्थिति होगी, तुम्हारा चित्त प्रसन्न हो जायगा, तुम्हें न किसी वस्तुके नाशसे शोक होगा और न किसी चीजकी चाह रहेगी। तुम सब भूतोंमें समभावको प्राप्त हो जाओगे। ऐसा होनेपर तुम्हारा मुझ परमात्मामें प्रेम होगा—मेरी पराभक्ति मिलेगी। उस भक्तिसे

मेरे यथार्थ स्वरूपको तत्त्वसे तुम जान सकोगे और उसे जानते ही तुम उसी क्षण मुझमें प्रवेश कर जाओगे। मैं और तुम दोनों एक हो जायँगे।' इसीका नाम 'ज्ञानकी परानिष्ठा' भी है।

× × × ×

परमात्माके इस अमूल्य उपदेशपर ध्यान देकर इसके अनुसार साधन करो—तभी वेदान्त-तत्त्वको पा सकोगे। याद रखो—विवाद या झगड़ेसे कुछ भी नहीं होगा। तुम्हारी शब्दोंकी हार-जीत तुम्हें मिथ्या विषाद और हर्षके चक्करमें ही डालेगी। उससे लाभ कुछ भी नहीं होगा। लाभ तो साधनसे होगा। इसलिये झूठे झगड़ेको छोड़कर साधनमें लग जाओ—जी-जानसे लग जाओ। मनुष्य-जीवन बहुत थोड़े दिनोंका है, देर न करो। याद रखो—देरमें कहीं मानव-जीवनका अवसान हो गया तो पीछे बहुत पछताना पड़ेगा।

वेदान्त क्या है?

१—वेदान्त हमें अमर बनना सिखलाता है, मरना नहीं। वह मृत्युको मार डालता है।

२—वेदान्त उत्साह और उल्लास बढ़ाता है तथा सत्कर्ममें प्रवृत्त करता है। वह आलस्य, विषाद और बुरे कामोंकी वृत्तिको नष्ट कर डालता है।

३—वेदान्त विश्वके सब प्राणियोंमें एक अमर आत्माके दर्शन कराकर सबसे प्रेम कराता है। वह घृणा, द्वेष, वैर और परायेपनको मिटा देता है।

४—वेदान्त सारे संसारको सत्, चित् और आनन्दमय बनाकर दिखा देता है। वह जडताको सर्वथा नष्ट कर डालता है।

५—वेदान्त कड़वी और दुःखभरी दुनियाको परम मधुर और अतुल सुखसे पूर्ण बना देता है। वह कटुता और कष्टकी जड़ ही काट डालता है।

६—वेदान्त जीवनको संयमी, संतोषी, निरहंकारी और कर्तव्यशील बनाता है। वह विषयवासना, अतृप्ति, अहंकार और अकर्मण्यताको आमूल नष्ट कर देता है।

७—वेदान्त जीवनको पवित्र, पुण्यमय, सौम्य और शान्तिमय बना देता है। वह अपवित्रता, पाप, ताप और अशान्तिका बीज नाश कर डालता है।

८—वेदान्त हमारे जीवनको आत्मा या परमात्माके परायण बना देता है। वह हमारी काम, क्रोध और लोभपरायणताको समूल नष्ट कर देता है।

९—वेदान्त ज्ञानकी अप्रतिम अपूर्व ज्योति जलाकर सर्वत्र निर्मल एकरस अनन्त प्रकाश फैला देता है। वह अज्ञानके तमाम अन्धकारको सदाके लिये मिटा देता है।

१०—वेदान्त ऊँच-नीचके लौकिक व्यवहारके रहते भी आन्तरिक ऊँच-नीचके भावको सर्वथा मिटा देता है। वह उपाधियोंके कल्पित भेदसे हटाकर हमें सर्वत्र नित्य अभेदरूप सम ब्रह्मके दर्शन कराता है।

११—वेदान्त मोहके सब पर्दोंको फाड़कर जीवकी सदाकी अपूर्ण साधको पूरीकर उसे परमात्मा बना देता है। फिर उसके लिये कुछ भी करना शेष नहीं रहने देता।

वैराग्यके साधन

जबतक विषयोंमें आसक्ति है, तबतक चित्तकी चंचलता नहीं मिट सकती और चित्तकी चंचलता रहते किसी भी बाह्य स्थितिमें कभी शान्ति नहीं मिल सकती। शान्ति चाहते हो तो विषयोंमें वैराग्य करो। याद रखो, परम वैराग्यवान् पुरुष ही परम शान्ति पा सकता है।

यह वैराग्य केवल बाहरी वस्तुओंको हठपूर्वक त्याग देनेमात्रसे ही नहीं होता। जबतक चित्तमें विषयोंका चसका लगा है, तबतक वैराग्य असली नहीं है। असली वैराग्य तो तब समझना चाहिये जब यह चसका (रस) भी नष्ट हो जाय।

वैराग्यकी प्राप्तिके लिये नीचे लिखे साधन करके देखो—ये सभी साधन न सबके कामके हैं और न सभी इन सबको कर ही सकते हैं, अपनी-अपनी स्थितिके अनुसार ही किये जा सकेंगे। करनेवालोंको वैराग्यकी प्राप्तिमें कुछ-न-कुछ लाभ तो होगा ही। जैसी चेष्टा होगी वैसा ही फल होगा।

१—ऐसा विचार करो कि विषयोंमें रमणीयता कहीं नहीं है, इनके सौन्दर्यका आधार सिर्फ हमारे मनकी कल्पना है। जिस स्त्री या पुरुषके रूपपर पुरुष या स्त्री मोहित होते हैं, वह रूप वस्तुतः क्या है? अपनी कल्पनासे ही उन्होंने उसपर सौन्दर्यका आरोप कर लिया है। चमड़ी, हड्डी, केश, नख और शरीरके अन्दर भरे हुए मल, मूत्र, मेद, मज्जा, रक्त, मांस आदिमें कौन-सी चीज असलमें सुन्दर है। मरे हुए मनुष्यका यही ढाँचा भयानक क्यों मालूम होता है? इसीलिये कि वहाँ उसमें रमणीयताकी कल्पना नहीं है।

२—ऐसा विचार करो कि विषयोंमें सुख कहीं नहीं है, भ्रमसे ही तुमने दुःखमें सुखका मिथ्या आरोप कर रखा है। गीतामें भगवान्ने विषयोंको 'दुःखयोनि', विषयरूप संसारको 'असुख' और 'दुःखालय' बतलाया है। भगवान्के वचनोंके साथ ही युक्तियोंसे भी सोचो—विषय

दुःखरूप हैं या नहीं। विषयोंके अभावमें दुःख है, उनके उपार्जनमें दुःख है, उनकी प्राप्तिमें दुःख है, परिणाममें दुःख है, संस्कारमें दुःख है, विषयसम्बन्धी गुणवृत्तियोंके विरोधमें दुःख है। अभावका दुःख प्रत्यक्ष ही है। उपार्जनमें कितना क्लेश होता है, इस बातका पता धनके पीछे पड़े हुए सभी मनुष्योंको है। दिन-रात चिन्ताकी भट्ठीमें जलना पड़ता है।

'प्राप्ति' में यद्यपि भ्रमवश कहीं-कहीं सुख-सा दीखता है, परंतु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं होती। कोई विषय ऐसा नहीं जो जलानेवाला न हो; संसारमें प्रत्येक विषय अपूर्ण है, वह अपनी पूर्णताके लिये दूसरी वस्तुकी अपेक्षा रखता है। पुत्र है तो उसे पढ़ाना है। उसका विवाह करना है, उसे सुयोग्य बनाना है, इस तरह नाना प्रकारकी कमी दिखायी पड़ती है जो सदा जलाया करती है। दूसरा कितना बढ़ गया, उसके पास धन अधिक हो गया, उसका सम्मान मुझसे अधिक है, उसके पुत्र हमारे पुत्रोंकी अपेक्षा अधिक योग्य हैं, इस तरह अपनी न्यूनतासे हृदयमें सदा जलन रहती है, और यह न्यूनता विषयोंसे कभी पूरी होती ही नहीं।

जो वस्तु आज है, कल जब वह नष्ट होगी या उसे बलात् छोड़ना पड़ेगा, तब बड़ा दुःख होगा। संसारमें प्रत्येक विषयका यही हाल है। आज है, कल नष्ट होगा या उसे यहीं छोड़कर हम कहीं और चले जायँगे। यह परिणाम दुःखदायी नहीं तो और क्या है? वस्तुतः विषयमात्र परिणाममें दुःखदायी है ही। इनमें सुखकी प्रतीति तो केवल भ्रमवश भोगकालमें होती है। जैसे दादको खुजलाते समय सुख मालूम होता है, परन्तु परिणाममें जलन होनेपर बड़ा दुःख होता है, वैसे ही सब विषयोंको समझो।

हाय! हम पहले कैसे सुखी थे; धन, पुत्र और सेवकोंसे घर भरा था, जवानीका मजा था, स्त्री कैसी सुन्दरी और सुशीला थी। जगत्‌भरमें यश फैला था। अब सब कुछ जाता रहा। हमारे समान दुःखी और

कौन होगा? इस तरह प्राप्त विषयोंके संस्कार भी दुःख देते हैं। अमुक विषय चाहिये, कैसे प्राप्ति हो? एक आदमीने वह उपाय बतलाया, आज उसने कहा, वह तो ठीक नहीं है, यह करो! वह उपाय अच्छा था, उसमें कोई पाप नहीं था, इसमें पाप है, परन्तु क्या करें। काम तो निकालना ही होगा। इस तरह गुणजन्य वृत्तियोंमें विरोध होनेसे चित्त घबरा उठता है। दुःखका पार नहीं रहता। क्या करें, क्या न करें। इसी उधेड़-बुनमें जी जला करता है।

इस प्रकार विषयोंमें दुःख देकर उनसे मनको हटाओ। मनमें निश्चय करो विषयोंमें न रमणीयता है, न सुख! उनमें दोष और दुःख-बुद्धि करो। धन-यौवनके गर्व, ऐश-आराम, पद-सम्मान, सजावट-शौकीनी, रूप-रंग, पूजा-प्रतिष्ठा, आदर-सत्कार आदिमें प्रत्यक्ष तापका अनुभव करो; इनसे भय करो, साँप-बिच्छू और प्रेत-पिशाचोंसे भी इन्हें भयानक समझो। किसी भी लोभ, लालच या प्रमादसे दूसरेके हितकी भ्रमपूर्ण भावनासे भी इनमें न फँसो। विषय-सुखको शरीर, शौर्य, शान्ति सबका नाश करनेवाला समझकर उससे चित्तवृत्तिको बार-बार हटाते रहो।

३—विषयोंसे चित्त हटानेके लिये प्रेम और नियमपूर्वक सत्संग और भजन करो; सत्संग और भगवान्‌के भजनसे चित्त स्थिर और निर्मल होगा। जितना-जितना चित्तरूपी आधार मलदोषसे रहित और स्थिर होगा, उतना-उतना ही उसमें परमानन्दरूप भगवान्‌की झाँकी स्पष्ट होती जायगी। भगवान्‌की नित्य अनन्त सुखमय झाँकीके सामने विषयोंका सारा सुखसौन्दर्य अपने-आप ही नष्ट होता जायगा। फिर भगवान्‌के सिवा अन्य विषयोंमें रस घटता जायगा। वैराग्य क्रमशः अपने-आप चमकेगा और वैराग्यके सुप्रकाशमें भगवान्‌की झाँकी और भी स्पष्टतर होगी। यों वैराग्यसे भगवान्‌का प्रकाश और भगवान्‌के प्रकाशसे वैराग्यकी उज्ज्वलता बढ़ती जायगी। परिणाममें एक परमानन्दमय भगवान्‌का ही सारे हृदयपर अधिकार हो जायगा, तुम्हारा दुःख, विषाद

और चांचल्य सर्वथा मिट जायगा। तुम भगवान्‌के परम तत्त्वको पाकर कृतार्थ हो जाओगे। उस परम तत्त्वरूप भगवान्‌की अखण्ड अनामय और अनन्त-आनन्दसुधारसमयी मुनिमनहारिणी परम मधुर झाँकीका प्रत्यक्ष कर लेनेपर अन्य समस्त रस सूख जायँगे और एकमात्र उसी अनन्त अमृतरससे समस्त विश्वब्रह्माण्ड भर जायगा। फिर कहीं भी अशान्ति और असुखका अस्तित्व नहीं रह जायगा। तुम दिव्यसुखके अनन्त सागरमें निमग्न हो जाओगे। स्वयं आनन्दमय होते हुए ही आनन्दका अनुभव करोगे। एक होते हुए ही अनेकों अनन्त लीलाओंके दर्शन करोगे। उस समय तुम क्या होओगे, इस बातको कोई बता नहीं सकता, न बता सकेगा।

× × × ×

याद रखो—संसारके विषय कभी पूरे नहीं होंगे। जितना भोगोगे, उतनी ही वासना बढ़ेगी और इन्हीं वासनाओंमें मर जाओगे तो फिर आगे भी वही चरखा तैयार मिलेगा। परन्तु यह मत खयाल करो कि घर छोड़ने, राख रमाने, सिर मुड़वाने, जटा रखाने या भीख माँगनेमें वैराग्य है। न यही निश्चय करो, गृहस्थके सब कर्मोंके करते रहनेसे ही वैराग्य हो जायगा। वैराग्यका आधार तो मन है। मन फँसा है तो राग है और मन यदि छूटा है तो वैराग्य है। घर करो, या घर छोड़ो—यदि मनकी विषयासक्ति नहीं छूटती तो फँसे हो। संयम, वैराग्य और साधनाके लिये घर छोड़ते हो और छोड़ने लायक हो तो छोड़ना भी ठीक है, इसी प्रकार संयम, वैराग्य और साधनाके लिये घरमें रहना चाहो तो वह रहना भी मुक्तिके लिये ही है। कहीं-कहीं छोड़नेमें बँधना होता है और बँधनेमें छोड़ना। खूब सोच-विचारकर काम करो। लक्ष्य रहे वैराग्य-विषयोंकी आसक्तिसे मुक्ति।

वैराग्य होगा तो शान्ति अवश्य ही प्राप्त होगी।

× × × ×

जीभके स्वादसे चित्तको हटाओ। शरीरका आराम न चाहो और

मान-प्रतिष्ठासे तो सदा डरते ही रहो। इनसे घृणा करो। साधककी हैसियतसे द्वेष करो तो भी तुम्हारा कल्याण ही होगा।

× × × ×

परमात्माको कभी न भूलो। निश्चय करो—वह तुम्हारा परम आत्मीय है, परम स्वजन है; वह ज्ञान, प्रेम, वात्सल्य, कृपा, दया, सुख, आनन्द, मंगल और कल्याणका अटूट खजाना है। उस एकके आश्रयसे ये सभी वस्तुएँ अपने-आप मिल जाती हैं। ऐश्वर्य, अमरत्व, माधुर्य, सत्य, सौन्दर्य—सभीका वह अनन्त सागर है। वह कल्याणमय, सौन्दर्यमय, शिवमय, प्रेममय, ज्ञानमय, मंगलमय और आनन्दमय है। वह निर्गुण, सगुण, निराकार, साकार सब कुछ है। वह तुम्हारा परम पिता, परम पति, परम गुरु, परम सखा, परम सुहृद्, परम ईश्वर, परम धन और परम सम्पत्ति है। वही तुम्हारी प्रियतमा पत्नी और परम स्नेहपात्र सन्तान है। वही माता बनकर तुम्हें स्तनपान कराता है और वही पुत्र बनकर स्तनपान करता है। तुम्हारे वात्सल्यका और तुम्हारी भक्तिका वही एक पात्र है। तुम उसके हो, वह तुम्हारा है। तुम्हारा यह नाता अटूट है। फिर उसे भुलाकर क्यों दूसरेको भजते हो? क्यों सारको त्यागकर असारके लिये भटकते हो? क्यों कारणको छोड़कर कार्यपर मोहित होते हो? क्यों कायाका परित्यागकर छायाके पीछे दौड़ते हो?

याद रखो, उसके बिना ही संसार दुःखमय है। जहाँ उसे पा जाओगे, फिर तमाम जगत् तुम्हें आनन्दमें डूबा हुआ आनन्दमय दीखेगा। और यह विश्वास करो कि तुम उसके अपने हो, वह निरन्तर तुम्हारे साथ है, हर समय तुम्हारी सहायता और रक्षाके लिये हर जगह तैयार है। वह तुम्हारा अपना आत्मा ही है। उसे ऐसा मान और जानकर निर्भय हो जाओ। उसके चरणोंपर अपनेको न्योछावर कर दो।

सच्चिदानन्द

निश्चय करो—मानो सत्, चित् और आनन्दका महान् समुद्र उमड़ा चला आ रहा है और तुम उसमें डूब गये हो। इतने गहरे डूबे हो कि तुम भी सत्, चित्, आनन्दरूप ही बन गये हो। सत्, चित्, आनन्दको छोड़कर और कुछ भी नहीं रहा। अब कल्पनाको छोड़ दो और इसी स्थितिमें, जबतक कोई दूसरी स्फुरणा न हो तबतक मस्त बने रहो। जब दूसरी स्फुरणा हो, तब उसे महासमुद्रकी एक लहर समझकर पुनः उसीमें मिला दो।

निश्चय करो—जो कुछ भी पदार्थ तुम्हें मनसे या इन्द्रियोंसे दिखलायी पड़ते हैं सब कल्पित हैं, बिना हुए ही कल्पनाकी दृष्टिसे दीखते हैं। वस्तुतः कुछ भी नहीं है। इसके बाद निश्चय करो कि स्थूल शरीर नहीं है, फिर निश्चय करो कि इन्द्रियाँ नहीं हैं। तदनन्तर मन-बुद्धिका भी निश्चयके द्वारा अभाव कर दो। जब इतना हो जाय तब इस निश्चय करनेवाली वृत्तिको भी छोड़ दो। जिस चित्तवृत्तिकी सहायतासे सबका अभाव किया, उस चित्तवृत्तिका भी अभाव कर दो। परन्तु याद रखो—जबतक किसी भी वृत्तिका त्याग किया जाता है, तबतक कोई-न-कोई वृत्ति रहती ही है, यह शेष रही हुई वृत्ति भी जब अपने-आप शान्त हो जाय, तब वह वास्तविक सबके त्यागकी स्थिति होती है। यही परमात्माका स्वरूप है। सबके सर्वथा मिट जानेपर जो बच रहता है, जिसको मिटानेवाला कोई नहीं रहता। वही सत्-स्वरूप है।

× × × ×

जैसे एक ही महान् विराट् आकाशमें असंख्य नगर, गाँव, घर, कोठरियाँ बने हुए हैं और उन सबके अन्दर भी वही आकाश अविच्छिन्नरूपसे व्याप्त है, इसी प्रकार एक ही परमात्मसत्तामें अनन्त-कोटि ब्रह्माण्ड बसे हुए हैं और सब ब्रह्माण्डोंमें वही एक परमात्मसत्ता व्याप्त है। ऐसा समझकर यह निश्चय करो कि जैसे कोठरीके अन्दरवाला आकाश महान् विराट्

आकाशसे भिन्न नहीं है, वैसे ही तुम भी परमात्मासे भिन्न नहीं हो। जैसे परमात्माकी दृष्टिसे सब कुछ परमात्मामें ही है, इसी प्रकार तुम भी व्यष्टिमेंसे अपने अहंकारको निकालकर सर्वाधार और सर्वव्यापी परमात्मामें स्थिर करके देखो—समस्त संसार तुम्हारे ही अन्दर बसा है और तुम सबमें समानरूपसे व्याप्त हो। ऐसा निश्चय हो जानेपर देखोगे कि तुम्हारा यह शरीर भी तुम्हारी ही विराट् सत्ताके किसी एक क्षुद्र अंशमें स्थित है और इस क्षुद्र अंशमें स्थित क्षुद्रतम शरीरके अन्दर भी तुम ही हो। वस्तुतः शरीर भी तुमसे भिन्न नहीं। क्योंकि जैसे आकाशमें बने हुए घरमें दीवालोंके अन्दर आकाश व्याप्त है और दीवाल भी आकाशमें आकाशसे पैदा होनेवाले चार भूतोंके सहित आकाशसे ही बनी है वैसे ही तुम्हारे अन्दर बने हुए इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें तुम्हीं व्याप्त हो और यह ब्रह्माण्ड भी तुम्हारी सत्तासे क्रियाशील बनी हुई और तुम्हारे ही संकल्पसे पैदा हुई प्रकृतिके साथ तुम्हारी सत्तासे बना है। इस प्रकार निश्चय करो—सब कुछ आत्मा समझकर आत्ममय बन जाओ।

× × × ×

जैसे स्वप्नमें स्वप्नके दृश्य, उनको देखनेवाला और देखना—तीनों तुमसे भिन्न और कुछ भी नहीं है, तुम्हीं देखनेवाले हो, तुम्हीं दीखनेवाली चीजें हो और तुम्हीं दर्शन हो। इसी प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड और ब्रह्माण्डके द्रष्टा और ब्रह्माण्डका दर्शन सब एक परमात्मा ही है और उस परमात्मासे तुम सर्वथा अभिन्न हो। ऐसा निश्चय करके अपनेको परमात्ममय बना लो।

× × × ×

निश्चय करो—तुम आनन्दमय हो, तुम्हारे आनन्दमें कभी कमी हो ही नहीं सकती। किसीकी ताकत नहीं जो तुम्हारे आनन्दमें बाधा दे सके और तुम्हारे आनन्दको मिटा सके। निश्चय करो—तुम्हारी अखण्ड सत्ता है, किसीकी शक्ति नहीं जो तुम्हारी सत्ताको हिला सके। मौत तुम्हें मार नहीं सकती। क्योंकि मौत भी तुम्हारी ही सत्तासे सत्तावान् है। तुम्हारी

सत्ता अखण्ड, अनन्त है, अमर है, सनातन है, देहके नाशसे तुम्हारा कभी नाश नहीं होता। निश्चय करो—तुम चेतन हो, नित्य चेतन हो। तुम्हारी चेतनतामें कोई विघ्न उपस्थित नहीं कर सकता। तुम्हारी ही चेतनासे सबमें चेतना है। तुम्हारी यह चेतना अखण्ड और असीम है। निश्चय करो—तुम स्वतन्त्र हो। मायाका कोई भी कार्य तुम्हें बाँध नहीं सकता। कोई भी किसी भी कालमें तुम्हें परतन्त्र नहीं कर सकता। जेलकी काली कोठरीमें भी तुम सदा स्वतन्त्र हो। कोई भी दीवाल तुम्हारी स्वतन्त्रतामें—तुम्हारी मुक्तिमें बाधा नहीं डाल सकती। निश्चय करो—तुम स्वामी हो—बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ, शरीर सब तुम्हारे गुलाम हैं। तुम इन्हें वशमें कर सकते हो। तुमपर इनका कोई बल नहीं चल सकता। अपने बलको, अपने स्वरूपको भूल रहे हो, इसीसे अपनेको इन मन और इन्द्रियों आदिके वशमें मान रहे हो। अपने स्वरूपको सँभालो—बलको याद करो। फिर देखोगे तुम्हीं सबके स्वामी हो—सब तुम्हारे अनुचर हैं, आज्ञावाही चाकर हैं। इस प्रकार अपनेको आनन्दरूप, सत्तारूप, चेतनरूप, स्वतन्त्र और प्रभु समझो। वस्तुतः तुम्हारा आत्मस्वरूप ऐसा ही है। शरीर और मनसे कोई भी प्रभु, स्वतन्त्र, चेतन, सत् और आनन्दरूप नहीं है, उनसे ऐसा मानना तो अज्ञान और अहंकार है। और आत्मासे ऐसा न मानना अज्ञान है, आत्मस्वरूपकी उपलब्धि तो तब समझी जाती है कि ऐसी स्थिति हो जाय, मानने-न-माननेका प्रश्न ही न रह जाय। वस्तुतः तुम ऐसे ही हो।

दुनियाका सुधार और उद्धार

दुनियाके सुधार और उद्धारकी चिन्ता छोड़कर पहले अपना सुधार और उद्धार करो। तुम्हारा सुधार हो गया तो समझो कि दुनियाके एक आवश्यक अंगका सुधार हो गया। यदि ऐसा न हुआ, तुम्हारे हृदयमें उच्च भावोंका संग्रह नहीं हो सका, तुम्हारी क्रियाएँ राग-द्वेषरहित, पवित्र नहीं हुईं और तुमने दुनियाके सुधारका बीड़ा उठा लिया तो याद

रखो, तुमसे दुनियाका सुधार होगा ही नहीं। यह मत समझो कि तुम लोकसेवक हो, लोकसेवा करते हो तो फिर तुम्हारे व्यक्तिगत चरित्रसे इसका क्या सम्बन्ध है? तुम्हारा चरित्र कलुषित या दूषित होगा तो तुम लोकसेवा कर ही नहीं सकते। लोकसेवा तुम उस सामग्रीसे ही तो करोगे जो तुम्हारे पास है! दुनियाके सामने तुम वही चीज रखोगे, उसको वही पदार्थ दोगे जो तुम्हारे अन्दर है! दुनियाको तुम स्वाभाविक ही वही क्रिया सिखलाओगे, जो तुम करते हो। इससे दुनियाका कल्याण कभी नहीं होगा।

× × × ×

जबतक तुम्हारी आभ्यन्तरिक आँखोंपर राग-द्वेषका चश्मा चढ़ा है, तबतक तुमको वस्तुस्थितिका यथार्थ दर्शन नहीं होगा। और यथार्थ ज्ञान बिना तुम इस बातका विचार नहीं कर सकोगे कि किस बातसे किसका सुधार या उद्धार होगा। विचार करोगे भी तो वह यथार्थ नहीं होगा। क्योंकि तुम्हारे विचारमें वही कार्य ठीक जँचेगा जिससे तुम्हारा राग है। परन्तु सम्भव है, वह कार्य ठीक न हो।

× × × ×

तुम यथार्थमें सुधरे नहीं हो और दुनियाका सुधार करना चाहते हो तो ऐसी हालतमें दो बातें होंगी। या तो तुम अज्ञानसे अपनेको उत्तम स्थितिमें पहुँचा हुआ—दुनियाको सुधारनेकी योग्यता रखनेवाला उच्च कोटिका पुरुष मानकर अभिमानके वश हो जाओगे अथवा दम्भ और कपट करने लगोगे। दोनों ही तरहसे तुम्हारा पतन होगा। दुनियाका सुधार तो होगा ही नहीं।

× × × ×

अभिमान दूसरोंको तुम्हारी दृष्टिसे अपनेसे नीचे गिरे हुए दिखावेगा। तुम उनपर शासन करना चाहोगे, उनके नेता बननेकी इच्छा करोगे, अपने झंडेके नीचे लाकर उन्हें अनुयायी बनाना चाहोगे। वे तुम्हारे अभिमानसे चिढ़ेंगे। परस्पर वैमनस्य होगा—द्वेषपूर्ण दल-बन्दियाँ होंगी। तुम्हारी और उनकी शक्ति एक-दूसरेको नीचा दिखानेमें खर्च

होने लगेगी। चित्त अशान्त रहेगा और इस चिन्तामें दुनियाके सुधारकी बात भूलकर तुम दुनियाका बड़ा अकल्याण कर बैठोगे।

× × × ×

याद रखो—जिस क्रियासे या चेष्टासे दुनियाकी यथार्थ भलाई है, उसमें तुम्हारी भलाई अवश्य ही निहित है। परन्तु दुनियाकी भलाई स्वयं भले बने बिना तुम कर ही नहीं सकते! इसलिये पहले खुद अपना सुधार करो। अपना सुधार होनेके बाद तुम दुनियाके सुधारकी घोषणा नहीं करोगे। फिर तो तुम्हारी हर एक क्रिया दुनियाका सुधार करेगी। तुम्हारा जगत्‌में रहना, तुम्हारा श्वास लेना, तुम्हारा खाना-पीना, तुम्हारा सोना-उठना, तुम्हारा व्यवहार करना, सभी कुछ स्वाभाविक, दुनियाकी भलाई ही करनेवाला होगा।

× × × ×

जबतक तुम्हारे मनमें यह बात है कि मेरे बिना संसारका भला कैसे होगा, तबतक संसारका तुमसे भला नहीं होगा। जबतक तुम यह समझते हो, मैं उत्तम हूँ, मुझमें सद्‌गुण हैं, मैं ऊँचा हूँ, दूसरे लोग निकृष्ट हैं, दुर्गुणी हैं, नीच हैं, तबतक तुम जगत्‌का कल्याण नहीं कर सकोगे। जबतक तुम यह चाहते हो कि मैं दुनियाका भला करूँ और दुनिया मुझे अपना नेता माने, अपना पूज्य समझे, अपना सेव्य समझे और मेरा सम्मान करे, मेरी सेवा-पूजा करे और मेरी बड़ाई हो, तबतक तुम उसका यथार्थ कल्याण नहीं कर सकते। क्योंकि तुम्हारे मनमें नेता, पूज्य और सेव्य बननेकी जो चाह है, वह तुम्हारे अन्दर एक ऐसी कमजोरी पैदा करती रहती है, जिससे तुम दुनियाके सामने सच्ची भलाईकी बात नहीं कह सकते। किसी भी अंशमें हो, तुम्हें उनके मनके अनुकूल ही बातें करनी पड़ेंगी। तुम्हारे मनमें यह डर रहेगा कि कहीं ये लोग नाराज न हो जायँ। क्योंकि उनकी नाराजीमें तुम्हें सेवा-पूजा और मान-प्रतिष्ठा न मिलनेकी आशंका है।

× × × ×

याद रखो—जबतक तुम मान-बड़ाईके लिये लोकसेवा करते हो,

लोकसेवा करके मान-बड़ाई पानेमें प्रसन्न होते हो, तबतक तुम्हारे मनमें लोकसेवाके साथ-ही-साथ मान-बड़ाईकी एक ऐसी चाह छिपी है, जो धीरे-धीरे तुम्हें लोकसेवासे हटाकर लोकरंजनकी ओर ले जाती है। और जब तुम्हारे मनमें लोकरंजनका भाव हो जायगा—तुम्हारा उद्देश्य लोकरंजन हो जायगा, तब तुम्हें लोकसेवा बिलकुल छोड़नी पड़ेगी। फिर तो तुम वही करोगे जिसमें लोकरंजन होगा; क्योंकि उसीसे तो तुम्हें मान-बड़ाई मिलेगी। जिस क्रिया और चेष्टासे तुम्हें मान-बड़ाई नहीं मिलेगी, उसे तुम नहीं करोगे—चाहे वह लोकहित और अपने हितके लिये कितनी ही आवश्यक क्यों न हो। और जिस क्रिया या चेष्टासे तुम्हें मान-बड़ाई प्राप्त होगी, उसको बुरा माननेपर भी तुम करोगे। तुम्हारा जीवन दम्भ और कपटपूर्ण बन जायगा।

× × × ×

इसका यह तात्पर्य नहीं कि तुम लोकसेवा करना छोड़ दो। लोकसेवा खूब करो, परन्तु साथ ही अपनेको लोकसेवाके योग्य भी बनाते रहो। कूड़ा भरे हुए झाड़ूसे दूसरेका घर झाड़ने जाओगे तो वहाँ झाड़नेके बदले कूड़ा बिखेर दोगे। तुम्हारे अन्दर जितनी ही पवित्रता आवेगी, उतनी ही तुम लोकसेवाकी योग्यता प्राप्त करोगे। इसीलिये बड़ी सावधानीसे अपने भावोंको पवित्र बनाओ, अपने चरित्रको सुधारो, अपने आचरणोंको ऊँचा बनाओ, राग-द्वेषका त्याग करो और मान-प्रतिष्ठाकी चुहड़ी चाहको छोड़ो; फिर तुम जो कुछ करोगे उसीसे दुनियाका सुधार या उद्धार होगा, चाहे उस समय तुम्हारी क्रियाएँ सर्वथा निवृत्तिपरक ही क्यों न हों।

सदा अपने मनको देखते रहो

सदा अपने मनको देखते रहो। अभिमान, काम, क्रोध और मोह आदि लुटेरे मनरूपी महलमें ऐसे दुबककर छिपे रहते हैं कि साधारण दृष्टिसे देखनेपर यह पता ही नहीं चलता—ये अन्दर मौजूद हैं; परन्तु मौका पाकर

ये प्रकट हो जाते हैं और फिर सद्‌गुण और सद्विचाररूपी धनको ऐसी निर्दयतासे लूटते हैं कि उम्रभरका किया-कराया प्रायः सब नष्ट हो जाता है।

× × × ×

अपनेको निर्भय मानकर कभी निश्चिन्त और असावधान न रहो। जबतक इन लुटेरोंका तुम्हारे मनमें बीजनाश न हो जाय तबतक बराबर इन्हें मारनेकी चेष्टा करते रहो। बड़ी-बड़ी युक्तियोंसे ये तुम्हारे मित्र और आज्ञाकारी सेवक-से बनकर अन्दर रहना चाहेंगे, परन्तु इनपर कभी विश्वास न करो। जरा-सा पता चलते ही पछाड़नेका जतन करो।

× × × ×

जहाँतक बने अभिमानी, कामी-क्रोधी और लोभी मनुष्योंका इच्छापूर्वक संग न करो। उनके संगसे तुम्हारे हृदयमें कलुषित भाव पैदा होंगे और उनसे तुम्हें कोई सच्ची सहायता नहीं मिलेगी।

× × × ×

किसीकी निन्दा मत करो। याद रखो, इससे तुम्हारी जबान गंदी होगी, तुम्हारी वासना मलिन होगी। जिसकी निन्दा करते हो, उससे वैर होनेकी सम्भावना रहेगी और चित्तमें कुसंस्कारोंके चित्र अंकित होंगे।

× × × ×

बिना विशेष आवश्यकताके बड़े आदमियोंसे, सरकारी अफसरोंसे और मान-प्रतिष्ठा चाहनेवाले पुरुषोंसे न मिलो। क्योंकि ऐसे लोग तुम्हारी सच्ची बात सुनना नहीं चाहेंगे। उनकी हाँ-में-हाँ मिलाकर तुम्हें अपने शुद्ध विचारोंकी अवहेलना करनी पड़ेगी। कहीं उनकी रायके विरुद्ध सच बोलोगे तो वे नाराज होंगे।

× × × ×

याद रखो—संसारमें दोषी लोग ही दूसरेके दोषोंको ढूँढ़ा करते हैं; क्योंकि उन्हें अपने दोषोंको ढँकनेके लिये दूसरेके दोषोंकी आड़ आवश्यक होती है। साधुलोग तो सब जगह साधुता ही खोजते हैं और

दिखलायी भी देती है उन्हें साधुता ही। वे नीर-क्षीरविवेकी हंसकी तरह गुण ही ग्रहण करते हैं।

× × × ×

बन-ठनकर बाहरसे लोगोंसे बहुत सुन्दर दिखायी देने लगे, इससे क्या हुआ। जबतक हृदय कलुषित है, जबतक अन्तर्यामी परमात्माके सामने तुम्हारा अन्तःकरण सुन्दर होकर नहीं आता, तबतक बाहरी सुन्दरता वैसी ही है जैसे शराबसे भरा हुआ सोनेका कलश।

× × × ×

प्रारब्धवश जगत्‌में तुम्हारी बड़ी कीर्ति हो गयी, लोग पूजने लगे—इससे क्या हुआ। जबतक तुम्हारा हृदय मलिन है, जबतक तुम लुक-छिपकर पाप करते हो, तबतक मानसिक अशान्ति, सन्ताप और नरकदुःखसे कदापि नहीं बच सकते।

× × × ×

भक्ति और ज्ञानके नामपर बुरे कर्म करना भगवान्‌को ठगनेकी गंदी चेष्टा करना है। इन लोगोंसे वह कहीं अच्छे हैं जो बुरे कर्म करते हैं, परन्तु बुरे कहलाते हैं। भक्ति और ज्ञानके नामको जो कलंकित नहीं करते।

× × × ×

'परायी चुपड़ी' देखकर जलो मत। अपनी एक रोटीमेंसे गरीबको एक टुकड़ा देकर खाओ। दुःखीको देना और सुखीके सुखमें प्रसन्न होना उनकी सेवा करना है। सबका हित चाहो, सबका हित करो और हित होते देखकर सुखी होओ।

व्यक्तित्वका प्रचार मत करो

सावधान! कहीं धर्म, सदाचार, ईश्वरभक्ति और ज्ञान-वैराग्यके प्रचारके नामपर अपने व्यक्तित्वका प्रचार मत करने लगना। ऐसा होना बहुत ही सहज है। आरम्भमें शुद्ध भावनाके कारण प्रचारके विषयकी

ही प्रधानता रहती है, परन्तु आगे चलकर ज्यों-ज्यों प्रचारका क्षेत्र बढ़ता है, त्यों-ही-त्यों प्रचारके विषयकी गौणता और अपने व्यक्तित्वकी मुख्यता हो जाया करती है। भगवान्, धर्म और ज्ञान-वैराग्य आदिके स्थानपर प्रचारककी पूजा-प्रतिष्ठा होने लगती है और वह भी इसीमें रम जाता है। इसीसे नये-नये दलोंकी या सम्प्रदायोंकी सृष्टि होती है।

× × × ×

अवश्य ही जिस पुरुषके द्वारा लोगोंको लाभ होता है अथवा किसी हेतुसे भी होनेकी आशा या सम्भावना होती है, उसके व्यक्तित्वकी प्रतिष्ठा होती है और उसका प्रचार भी होता है। तथापि उसको तो सावधान रहना ही चाहिये। नहीं तो परिणाम यह होगा कि जिस विषयका प्रचार करनेके लिये उसने कार्यक्षेत्रमें पैर रखा था, उस विषयके प्रचारमें वह स्वयं ही बाधक हो जायगा और अपने व्यक्तित्वकी प्रतिष्ठाके लिये लोकरंजनका अभिलाषी होकर अपने मूल उद्देश्यसे गिर जायगा।

× × × ×

शुद्ध भाव दीखनेपर भी प्रचारक अपने मनमें मोहवश लोकरंजनकी आवश्यकताका अनुभव किया करता है। वह सोचता है कि भगवत्-भक्ति आदिका प्रचार तभी होगा, जब लोग मेरी ओर आकर्षित होकर मेरी बात सुनेंगे और लोगोंको अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये मुझे अपने रहन-सहनमें, कथनी-करनीमें, बोल-चालमें, व्यवहारमें, भाषामें, स्वरमें और भावभंगी आदिमें कुछ विशेषता लानी चाहिये। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भगवद्भक्तोंके बाहर-भीतरके सभी आचरणोंमें साधारण लोगोंकी अपेक्षा ऐसी कुछ विलक्षणता अवश्य होनी चाहिये, जिससे उनके आदर्शके अनुसार अन्यान्य लोग अपना चरित्र निर्माण कर सकें और भगवद्भक्तिका यथार्थ प्रचार हो। बुरे आचरणवाला भक्त लोगोंके सामने बुरा आदर्श रखनेवाला होनेके कारण भगवद्भक्तिका प्रचार नहीं कर सकता। वस्तुतः वह भगवद्भक्त ही नहीं है; क्योंकि सच्चे भक्तमें बुरे आचरणोंका अभाव ही होता है। परन्तु शुद्ध आचरणोंकी विलक्षणता स्वाभाविक होनी चाहिये

लोगोंको दिखानेके लिये नहीं। जहाँ दिखानेकी भावना है, वहीं मनमें मोहवश गुप्तरूपसे व्यक्तित्वकी प्रतिष्ठाका मनोरथ छिपा है जो भगवद्भक्तिके प्रचारके लिये लोकरंजनकी आवश्यकताका अनुभव करानेमें प्रधान हेतु होता है।

× × × ×

लोकरंजनकी इच्छावाला मनुष्य शुद्धाचारी ही हो, ऐसी बात नहीं है। उसको तो अपने बाहरी दिखावेपर अधिक ध्यान रखना पड़ता है, इसीसे वह सुन्दर स्वरमें गाना, मधुर भाषामें व्याख्यान देना, नाचना, लोगोंको हँसाने-रुलानेके उद्देश्यसे विभिन्न प्रकारके स्वरोंमें बोलना, भाव बताना, मुखाकृति करना, ध्यानस्थकी भाँति बैठना आदि न मालूम कितनी बातें करता है। उसका ध्यान रहता है कि मेरे गायनसे, मेरे भाषणसे, मेरे व्याख्यानसे, मेरे सत्संगसे और मेरी ध्यानस्थ मूर्तिसे लोगोंका मेरी ओर खिंचाव हुआ या नहीं। गान, नृत्य, भावप्रदर्शन आदि चीजें कलाकी दृष्टिसे बहुत उपादेय हैं और किसी सीमातक प्रचारकी दृष्टिसे भी इनकी उपयोगिता है, परन्तु जहाँ और जितने अंशमें इनका उपयोग केवल लोकरंजनके लिये होता है, वहाँ उतने अंशमें इस लोकरंजनके पीछे, किसी भी हेतुसे हो, अपने व्यक्तित्वके प्रचारकी वासना छिपी रहती है। तुम यदि साधक पुरुष हो अथवा अपना पारमार्थिक कल्याण चाहते हो तो ऐसी वासनाको मनमें कहीं किसी कोनेमें भी मत रहने दो। भगवान्‌की भक्ति और सदाचारका प्रचार भगवत्सेवाके लिये ही करो।

× × × ×

सच्ची बात तो यह है कि भगवद्भक्ति, ज्ञान और वैराग्य तो प्रचारकी चीज ही नहीं हैं। योग्य अधिकारीके द्वारा ही योग्य अधिकारीको इनका उपदेश होता है और तभी अच्छा फल भी होता है।

भगवत्कृपापर विश्वास

विश्वास करो, तुमपर भगवान्‌की बड़ी कृपा है; तभी तो तुम्हें मनुष्यका देह मिला है। यह और भी विशेष कृपा समझो जो तुम्हें भजन करनेकी बुद्धि प्राप्त हुई और भजनके लिये सुअवसर मिला। इस सुअवसरको हाथसे मत जाने दो, नहीं तो पछताओगे।

× × × ×

तुम चाहे राजा हो या राहके भिखारी—तुम बड़े भाग्यवान् हो, अगर तुम अपने मनको भगवान्‌के भजनमें लगाते हो। भजनका धन जिसके पास है वह राहका भिखारी भी राजा है और जो इस धनसे कंगाल है उस राजाको राहके भिखारीसे भी ज्यादा कम-नसीब समझो।

भजनमें तुम्हें कुछ भी त्याग नहीं करना पड़ता—काम वैसे ही करो जैसे करते हो। अब जो अपने लिये करते हो, इस शरीरके लिये करते हो—फिर भगवान्‌के लिये करोगे—अपनेको और शरीरको भगवान्‌की सेवाका साधन बना दोगे। काम तब भी ज्यों-का-त्यों ही होगा। हाँ, तुम्हारे सिरसे बड़ा भारी अहंकारका बोझ उतर जायगा। तुम मालिकके सेवक बनकर निश्चिन्त हो जाओगे। तुम्हारा मन करेगा उनका चिन्तन, शरीर करेगा उनकी सेवा, तुम तो खुद उनमें जा बसोगे।

× × × ×

देखो एक स्त्रीके लिये इंग्लैंडके राजाने राज्य छोड़ दिया था। क्या तुम भगवान्‌के लिये मनकी दिशाको भी नहीं बदल सकते? मोड़ दो न मनके मुँहको—उसे भोगोंकी ओरसे फिराकर भगवान्‌की ओर कर दो—गति ज्यों-की-त्यों ही रहेगी। हाँ, तब नरकके निन्दनीय और गंदे गर्तसे निकलकर तुम दिव्य स्वर्गकी—महान् सुखकी—परम शान्तिमय आनन्दकी सुधामयी भूमिकापर जरूर पहुँच जाओगे।

भगवान्‌की कृपापर विश्वास करनेसे यह सब कुछ आप ही हो जायगा। विश्वास करो—अपनेको उसके द्वारा सुरक्षित समझो। उसकी पग-पगपर झाँकी करो। देखो, भगवत्कृपा बरस रही है—सदा, सब समय, सब ओरसे, अनन्त धाराओंसे अविराम बरस रही है, उसमें नहाकर कृतकृत्य हो जाना तुम्हारे ही हाथ है।

मायाकी मोहिनी

मायाकी कैसी मोहिनी है! बुद्धिमान् पुरुष भी मोहरूप कर्तव्यके मोहमें पड़कर असली कर्तव्यको भूल रहे हैं! सोचो तो सही। तुम कौन हो और तुम्हारा क्या कर्तव्य है? मोहसे छूटना कर्तव्य है या मोहकी गाँठोंको और भी उलझाना? जिस नाम और रूपके चक्करमें फँसे हुए तुम उस नाम-रूपके कल्पित सम्बन्धसे अपनेको सम्बन्धित मानकर कर्तव्य-बोधसे उस मोहको और भी घना बना रहे हो, वह नाम-रूप वस्तुतः क्या तुम्हारा स्वरूप है? माँके पेटमें आनेसे पहले क्या तुम्हारा यही नाम-रूप था? यदि नहीं तो इससे कैसा सम्बन्ध और कैसा कर्तव्य? खोल दो न अपने ही हाथों दी हुई इस गाँठको। क्यों 'नलिनीके सुअटा' बने बँध रहे हो?

'क्या करें, यहाँ ऐसी ही योग्यता है, ऐसा किये बिना आदर्श बिगड़ता है, लोग क्या कहेंगे?' मन-ही-मन ऐसी कल्पना-जल्पना करके क्यों अपनेको जकड़ते जा रहे हो? कैसी योग्यता? कैसा आदर्श? मायाके चक्करमें फँसे रहना ही क्या तुम्हारे लिये योग्य है? अज्ञानके बन्धनसे न छूटना ही क्या आदर्श है? लोग निन्दा करेंगे? किसकी? तुम्हारी या तुमने जिनको अपने साथ तादात्म्य कर लिया है उन नाम और रूपकी? अरे, उनकी निन्दासे तुम्हारा क्या बिगड़ता है? होने दो उनकी निन्दा, बिगड़ने दो उनकी इज्जत, नष्ट हो जाने दो न उनके अस्तित्वको। तुम क्यों उन्हें बचानेकी फिक्रमें सूखे जा

रहे हो? उन्हींके कारण तो तुम्हारी यह दुर्दशा है। नित्य सत्य और अज-अविनाशी होनेपर भी उन्हींके मोहमें तुम अनित्यसे—असत्‌से हो रहे हो और उन्हींकी ममता और आसक्ति तुम्हें जन्म और मृत्युके सन्ताप-भरे सपने दिखा रही है।

× × × ×

'घरवालोंको क्लेश होगा, पुत्र-बन्धु आदि कष्ट पावेंगे।' मान लो, तुम्हारा यह पंचभूतका चोला आज छूट गया होता तो इनकी क्या स्थिति होती? तब ये जिन्दा रहते या नहीं? यदि रहते तो अब भी रहेंगे? तुम क्यों नहीं अपनेको मर गया मान लेते? सचमुच जरा मरके देखो तो सही, कुछ ही दिनोंमें तुम्हारी सारी याद किस आसानीसे भुला दी जाती है। तुम्हारी आवश्यकता कैसे अनावश्यक हो जाती है? सचमुच तुमको किसीने नहीं पकड़ रखा है, तुमने आप ही अपनेको पकड़ा हुआ मान लिया है। तोड़ डालो न इस भ्रमके बन्धनको!

× × × ×

'क्या करें जिम्मेवारी निबाहना भी मनुष्यका धर्म है। हम सब समझते हुए जिम्मेवारीका त्याग कैसे कर दें?' बड़े जिम्मेवार बन रहे हो और बात तो जाने दो, शरीरकी जिम्मेवारी तो निबाहो, तुम्हारी जिम्मेवारीका निर्वाह तभी समझा जायगा जब तुम इसे बीमारी या मौतके मुँहसे बचा सकोगे। जब तुम शरीरकी जिम्मेवारी भी नहीं निबाह सकते तब और जिम्मेवारीकी तो बात ही कौन-सी है? बिना ही बनाये पंच बनकर जिम्मेवार बन बैठे हो! मोहने ही प्रेमका स्वाँग भरकर तुम्हारे ऊपर जिम्मेवारी और कर्तव्यका बोझ लाद रखा है। उतारकर फेंक दो न जिम्मेवारीके इस बोझको। तुरन्त हलके हो जाओगे।

× × × ×

देखो तो, तुम्हारे नित्य निरामय आनन्दघन-स्वरूपमें विषाद, मृत्यु और दुःखको स्थान ही कहाँ है? तुम अमृतोंके अमृत, आनन्दके आनन्द और प्रकाशोंके प्रकाश हो। तुम्हारी ही चाँदनी सर्वत्र छिटक

रही है, तुम्हारा ही प्रकाश सर्वत्र फैल रहा है, तुम्हारा ही ऐश्वर्य सर्वत्र व्याप्त है, तुम्हारा ही आनन्द सर्वत्र विस्तृत है, तुम्हारी ही सुधा-माधुरीसे सब जीवन धारण कर रहे हैं। तुम अखण्ड हो, अनन्त हो, अजर हो, अमर हो, सत् हो, सनातन हो, चेतन हो, ज्ञानस्वरूप हो। अपने स्वरूपको क्यों नहीं सँभालते? क्यों अपनी ही भूलभरी भूलसे भूल-भुलैयामें पड़े भटक-से रहे हो?

× × × ×

संसारका कर्तव्य कभी पूरा नहीं होगा। यहाँकी सफलता भी असफलता है। वह अनन्त सुख—जो तुम्हारा स्वरूप है—तुम्हें अपने अन्दर ही प्राप्त होगा। वह धनसे, भोगोंसे, विजयसे, कीर्तिसे, नीतिसे, धर्मसे, किसीसे भी किसीमें भी नहीं मिलेगा। फिर तुम क्यों कर्तव्यका बोझा लादे, योग्यता और अयोग्यताका आडम्बर लिये, जिम्मेवारीका भार उठाये, उन्मत्तकी भाँति इधर-उधर धक्के खा रहे हो?

× × × ×

वह नित्यस्वरूप आत्मा न उत्पन्न होता है, न मरता है, न किसी अन्य कारणसे उत्पन्न हुआ है, न आप ही कुछ बना है, वह तो अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है, शरीरके मारे जानेपर वह नहीं मरता। किसीके नाशसे उसका नाश नहीं होता। वह अणु-से-अणु और महान्-से-महान् है। वह तुम्हारे अन्दर है, तुम्हारा अपना स्वरूप है। तुम उसको पहचानो, उसकी महिमाको जानो—तुम्हारा सारा शोक, विषाद, भ्रम मिट जायगा।

परमात्मा एक है

सत्य-तत्त्व या परमात्मा एक हैं। वे निर्गुण होते हुए ही सगुण, निराकार होते हुए ही साकार, सगुण होते हुए ही निर्गुण तथा साकार होते हुए ही निराकार हैं। उनके सम्बन्धमें कुछ भी कहना नहीं बनता

और जो कुछ कहा जाता है सब उन्हींके सम्बन्धमें कहा जाता है। अवश्य ही जो कुछ कहा जाता है, वह अपूर्ण ही होता है। पूर्णका वर्णन किसी भी तरह हो नहीं सकता। परन्तु परमात्मा किसी भी हालतमें अपूर्ण नहीं हैं; उनका आंशिक वर्णन भी पूर्णका ही वर्णन होता है; क्योंकि उनका अंश भी पूर्ण ही है। इन्हीं परमात्माको ऋषियोंने, सन्तोंने, भक्तोंने नाना भावोंसे पूजा और परमात्माने उन सभीकी विभिन्न भावोंसे की हुई पूजाको स्वीकार किया।

× × × ×

वे परात्पर सच्चिदानन्दघन एक परमेश्वर ही परम तत्त्व हैं। वे गुणातीत हैं परन्तु गुणमय हैं, विश्वातीत हैं परन्तु विश्वमय हैं। सबमें वही व्याप्त हैं और जिनमें वह व्याप्त हैं वे सभी पदार्थ—समस्त चराचरभूत उन्हींमें स्थित हैं। वे ही परात्पर प्रभु विज्ञानानन्दघन ब्रह्मा, महादेव, महाविष्णु, महाशक्ति, अनन्तानन्दमय साकेताधिपति श्रीराम और सौन्दर्यसुधासागर गोलोकाधीश्वर श्रीकृष्ण हैं। ये सभी विभिन्न स्वरूप सत्य और नित्य हैं। परन्तु अनेक दीखते हुए भी वस्तुतः ये हैं सदा-सर्वदा एक ही।

× × × ×

साधक या भक्त अपनी-अपनी रुचिके अनुसार इनमेंसे या इनसे अतिरिक्त अन्य किसी भी एक लीलास्वरूपकी उपासना आवश्यक समझकर किया करते हैं और उनका ऐसा करना है भी बहुत ही ठीक। भगवान्‌के अनेकों रूपोंकी उपासना एक साथ नहीं की जा सकती। चंचल मनको शान्त और एकाग्र करनेके लिये एक ही रूपकी उपासना आवश्यक होती है। अनेकों रूपोंकी उपासनासे तो चित्तकी चंचलता और भी बढ़ जाती है। इसीलिये विचारशील दिव्यदृष्टिप्राप्त सद्‌गुरु साधककी रुचि, उसकी स्थिति, पात्रता, अधिकार और परिणामको देखकर उसे किसी एक ही रूपकी उपासना बताकर साथ ही ऐसा मन्त्र भी दे देते हैं जिसके द्वारा वह अपने उपास्यदेवका भजन कर सके। परन्तु साथ ही यह भी बतला देते हैं कि तुम्हें जिन भगवान्‌की उपासना

बतलायी गयी है, एकमात्र भगवान् ये ही हैं, ये ही भिन्न-भिन्न नाम-रूपोंसे भिन्न-भिन्न देश, काल, पात्रमें पूजित होते हैं। कोई भी स्वरूप तत्त्वतः उनसे भिन्न नहीं है; जब भिन्न ही नहीं, तब छोटे-बड़ेका तो सवाल ही नहीं रह जाता। तुम अपने उपास्यरूपको पूजते रहो, परन्तु दूसरेके उपास्यदेवसे द्वेष न करो, उसे नीचा न समझो; ऐसा करोगे तो तुम अपने ही उपास्यदेवसे द्वेष करोगे और नीचा समझोगे। क्योंकि तुम्हारे उपास्यदेव भगवान् ही तो दूसरे लोगोंके द्वारा दूसरे रूपोंमें पूजित होते हैं। यदि तुम यह मान बैठोगे कि दूसरोंके उपास्यदेव भगवान् कोई दूसरे हैं तो ऐसा करके तुम अपने ही भगवान्‌की एक सीमा बाँधकर उसे छोटा और अनेकमेंसे एक बना दोगे। फिर वह परात्पर नहीं रहेगा; लोकपालोंकी भाँति एक देवता-विशेष रह जायगा। और ऐसे 'अल्प' और 'सीमाबद्ध' भगवान्‌से तुमको असीम भूमाकी प्राप्ति नहीं होगी। तुम अपने ही दोषसे आप परात्पर परमेश्वरके दर्शनसे वंचित रह जाओगे। इसलिये अपने ही इष्टमें अनन्यभाव रखो, परन्तु दूसरेके इष्टोंको अपने ही इष्टका रूपान्तर समझकर उन सभीका सम्मान करो। दूसरे सभी स्वरूपोंको अपने इष्टके ही विभिन्न स्वरूप मानना अनन्यता है। इसके विपरीत करना तो 'अन्य' को आश्रय देना है; जो अनन्य भक्तके लिये व्यभिचार है।

× × × ×

सुना गया है कि कुछ भावुक लोग अनन्यताके नामपर ऐसा प्रचार करते हैं कि रामके भक्त कृष्णका नाम न लें और कृष्णके भक्त रामका नाम न लें। लेंगे तो उन्हें पाप होगा।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस उपनिषदुक्त मन्त्रका भी पूरा उच्चारण न करें। 'शिव' की समझसे ऐसा प्रचार करना ही अनाचार या पाप है। शास्त्र तो कहते हैं—एक ही भगवान्‌के सब नाम हैं। नामापराधमें शिव-विष्णुके नामोंमें

भी भेद मानना एक अपराध माना गया है। '**शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्च हृदयं शिवः**' यह शास्त्र-वचन प्रसिद्ध है। जब शिव-विष्णुमें भेद मानना भी अपराध है, तब भक्त विष्णु, हरि, राम, कृष्ण और नारायणमें तत्त्वतः भेद मानकर एक-दूसरेके नाम-जपमें अपराध बतलावें और साधकोंके मनोंमें भगवान्‌के नित्य सत्य पवित्र और एकके ही अनेक रूप बने हुए स्वरूपों और नामोंमें भेदबुद्धि उत्पन्न करें, इससे बढ़कर भगवदपराध और क्या हो सकता है?

× × × ×

'शिव' सबसे बड़ी नम्रताके साथ—परन्तु साथ ही जोर देकर यह कहता है कि ऐसा मानना छोड़ दो। तुम्हें कोई भड़कावे—सन्देहमें डाले तो उसके वचनोंपर विश्वास न करो। भगवान्‌को एक ही मानकर श्रद्धा-विश्वासके साथ भगवान्‌का नाम-कीर्तन करते रहो। तुम्हारा कल्याण ही होगा।

सन्तकी सेवा

मनुष्य-जीवनका अमोलक समय व्यर्थ बीता जा रहा है। मौतके मुँहमें बैठे हो, जब मौत दबोच डालेगी, फिर तुम कुछ भी नहीं कर सकोगे। जिस धन, मान, परिवार, विद्या, यश, प्रभुत्व आदिके भरोसे आज गर्वमें फूल रहे हो, उनमेंसे कोई भी उस समय तुम्हारी जरा भी मदद नहीं करेंगे, उन्हें हाथसे जाते देखकर तुम रोओगे, उनकी ओर निराश नेत्रोंसे तुम ताकते रह जाओगे! पर हाय! निरुपाय हो जाओगे—न तुम उन्हें अपने किसी काममें बरत सकोगे, न वे ही तुम्हारी सेवा-सहायता करेंगे! उस समय समझोगे, हमने बड़ी गलती की; बड़े सौभाग्यसे, बहुत अरसेके बाद भगवत्कृपासे मिले हुए मनुष्यशरीरको हमने बेकाम खो दिया। पछताओगे—रोओगे, परन्तु '**अब पछिताये का बनै जब चिड़िया चुग गई खेत!**'

इसलिये सावधान हो जाओ। अपने मनुष्यत्वको सँभालो। तुम्हारी मनुष्यता इसीमें है कि तुम भगवान्‌से प्रेम करना सीख लो। सन्तोंकी सीख मानकर उनकी आज्ञाका पालन करो। उनके बतलाये रास्तेपर चलकर उन-जैसे ही बननेका जतन करो। याद रखो—यों करोगे तो तुम्हारा जीवन सफल हो जायगा। तुमपर भगवत्कृपाकी वर्षा होगी। तुम्हारे सारे पाप-सन्ताप जल जायँगे। तुम्हारा हृदय आनन्द और शान्तिके सुधासागरमें डूब जायगा। तुम्हें भगवत्प्रेमकी प्राप्ति होगी। तुम कृतार्थ हो जाओगे।

परन्तु याद रहे, केवल सन्तोंकी बाहरी नकलसे कुछ भी नहीं बनेगा। आजकल लोग या तो सन्तोंकी ओर कोई नजर ही नहीं डालते या उनके मनमें सन्त कोई चीज ही नहीं हैं। और जो कुछ लोग सन्तोंकी ओर आकर्षित होते हैं, उनमें ज्यादातर ऐसे ही होते हैं जो सन्तोंके गुणोंपर, उनके भगवत्प्रेमपर, उनकी ऊँची आध्यात्मिक स्थितिपर नहीं रीझते, इन बातोंको वे प्रायः जानते ही नहीं। वे रीझते हैं सन्तके मान-सम्मानपर, उसकी पूजा-प्रतिष्ठापर, उसके चमत्कारोंपर, उसके बाहरी दिखावेपर और स्वयं भी वैसा ही बननेकी चेष्टा करते हैं। मान-सम्मान, पूजा-प्रतिष्ठा और यश-कीर्तिका मोह उन्हें आ घेरता है और मोहग्रस्त वे इनकी प्राप्तिके लिये अपनेमें चमत्कारोंको लानेकी चेष्टा करते हैं। योगका अभ्यास किये बिना योगविभूतियाँ मिलती नहीं, तब मिथ्या चमत्कारोंका स्वाँग रचते हैं, स्वयं डूबते हैं, सन्तके नाम और वेषपर कलंक लगाते हैं और सेवकोंके मनोंमें अश्रद्धा उत्पन्न करके उन्हें पुण्यपथसे विचलित करते हैं। योग-विभूति तो मिले कैसे? योगके आठ अंगोंमें पहले दो अंग हैं—यम और नियम। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—यम और शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वरप्रणिधान नियम—ये दोनों योगरूपी महलकी नींव हैं। जैसे बिना नींवके महल नहीं खड़ा हो सकता, वैसे ही बिना यम-नियमके योगसिद्धि नहीं हो सकती। इसीसे आजकल

योगी बहुत मिलते हैं परन्तु सच्चे योगसिद्ध पुरुष प्रायः नहीं मिलते। इसलिये मान-सम्मान आदि पानेके उद्देश्यसे सन्तकी झूठी नकल मत करो। सच्ची नकल करो, उसके आचरणोंका अनुसरण करो, सन्त बननेके लिये। सन्त कहलानेके लिये नहीं।

× × × ×

सन्तोंकी लीला बड़ी विचित्र है, उनकी महिमा कौन गा सकता है? जो परम तत्त्व अनादि है, एक है, सर्वव्यापी है, सर्वाधार, सर्वनियन्ता और सर्वमय है, जिसके अस्तित्वसे सबका अस्तित्व है, जिसके स्वतःसिद्ध प्रमाणसे सबका प्रमाण है, जिसकी चेतनासे सबमें चेतनत्व है, जिसका आनन्द ही सबमें लहरा रहा है। जो इस अस्तित्व, प्रमाण, चेतना, आनन्द आदिसे पृथक् नहीं है, परन्तु जो स्वयं सत् है, प्रमाणस्वरूप चेतन और आनन्दरूप है। जिसकी ऐसी व्याख्या भी उसके एक ही अंगका वर्णन करती है। जो वर्णनातीत है, कल्पनातीत है, उस परम सत्‌में जिसकी नित्य अचल अभेद-प्रतिष्ठा है, वही सत् है और ऐसा सत् ही सन्त है।

परन्तु सन्तका स्वरूप-वर्णन करना उसको अपने स्थानसे च्युत करनेकी चेष्टा करना है; अवश्य ही वह कभी च्युत होता नहीं; क्योंकि वह अच्युतमें अचलप्रतिष्ठ है तथापि अपनी बुद्धिसे उसकी माप-तौल करने जाना है लड़कपन ही। हाँ, यदि लड़कपन सरल हृदयका सचमुच लड़कपन ही हो तो इसमें भी बड़ा लाभ है। बुरी नीयतको छोड़कर अन्य किसी भी हेतुसे सन्तका स्मरण-चिन्तन करना लाभदायक ही होता है; क्योंकि सन्तोंका संग अमोघ है।

बस, तुम तो सन्तकी सेवा करो, सन्तकी आज्ञाका पालन करो, सन्तको तौलनेकी चेष्टा छोड़ दो। सन्त तुम्हारी तुलापर तुलनेवाले पदार्थ नहीं हैं। श्रद्धा-भक्ति करके उनकी कृपा प्राप्त करो, तब वे तुम्हें अपना कुछ रहस्य बतलावेंगे। तुम उन्हें बहुत ही थोड़े अंशमें भी जान लोगे तो चकित हो जाओगे। जिन बातोंको तुम असम्भव मानते हो,

जो तुम्हारी धारणामें नहीं आतीं, जो तुम्हारी कल्पनासे अतीत हैं, सन्त वैसी एक नहीं, अनेक बातोंका अनुभव करते हैं। उनका प्रत्यक्ष करते हैं। उन्हें काममें लाते हैं। अविश्वासी और अश्रद्धालु अथवा अज्ञानी लोग चाहे इस बातको न मानें परन्तु किसीके मानने न माननेसे सन्तको क्या मतलब! वे क्यों किसीको मनवाने लगे? कहने ही क्यों लगे उनकी है, न कि मोहमें फँसी दुनियाके प्रमाणपत्रसे! कोई भी संसारका प्रमाण-पत्र उनकी अपनी मौजसे मतलब सचाईके लिये प्रमाण नहीं है और कोई भी प्रमाणपत्र उनकी स्थितिको बतला नहीं सकता। जगत्‌के प्रमाणोंका—सर्टिफिकेटोंका आसरा वही देखते हैं जो सन्त नहीं हैं, पर सन्तका बाना धारण कर जगत्‌से पूजा-प्रतिष्ठा चाहते हैं!

सन्त ब्रह्म हैं, ब्रह्मस्थित हैं, ब्रह्मज्ञानी हैं, ब्रह्मपरायण हैं, ब्रह्ममय हैं। सन्त परमात्माके आश्रय हैं, परमात्मा हैं, परमात्माके स्वरूप हैं, परमात्माके प्यारे हैं, परमात्माके पुत्र हैं, परमात्माके शिष्य हैं और परमात्माके आश्रित हैं। सन्त भगवान्‌की दिव्य नित्यलीलामें सहायक हैं, नित्यलीलाके नट हैं, लीलाके साधन हैं, लीलाके यन्त्र हैं, लीला हैं और लीलामयके हृदय हैं। वे सब कुछ हैं। अन्तर्जगत्, कारणजगत् सबमें उनका प्रवेश है; और वे कारणजगत्‌के भी परे हैं। यह याद रहे—यह सन्तकी बात है, सन्त नामधारीकी नहीं। सन्त वही है, जो ऐसा है।

ऐसे सन्तको पानेकी इच्छा करो। भगवान्‌से प्रार्थना करो। भगवान्‌की दयासे ही ऐसे सन्त मिलते हैं। सन्तोंका मिलन सन्तोंकी दृष्टिमें भगवान्‌के मिलनसे भी बढ़कर है। क्योंकि भगवान्‌के रंगमहलकी बातें वे माहली सन्त ही जानते हैं और उन्हींसे भगवान्‌के रहस्यका पता लगता है। इसीलिये सन्तलोग भगवान्‌से प्रार्थना करके भी सन्तका मिलन चाहते हैं और ऐसे सन्तमिलनको तरसनेवाले प्रेमीजनोंकी प्रेमपिपासाको और भी बढ़ानेके लिये—और भी अनन्य बनानेके लिये भगवान् अपने रसज्ञ सन्तोंको उनसे मिला देते हैं। वे परस्पर जब मिलते

हैं और जब उनकी घुट-घुटकर छनती है, तब भगवान्‌को भी बड़ा मजा आता है। वे छिप-छिपकर अपनी ही ऐसी बातें—जिनको अपने मुँहसे कह नहीं सकते, परन्तु प्रकट भी करना चाहते हैं—उन प्रेमियोंको करते देखकर और भी खुल जाते हैं। प्रकट होकर, अपना पूरा हृदय खोलकर, सारे व्यवधानोंको मिटाकर उन्हें गले लगा लेते हैं। भगवान् सन्त बन जाते हैं और सन्त भगवान्! यह आनन्द लूटना हो तो बस, भगवान्‌से सन्तमिलनकी प्रार्थना करो!

ऐसे सन्तकी प्राप्तिसे तुम्हारे हृदयमें कल्याणका सागर उमड़ उठेगा। तुम उसमें अवगाहनकर, अनन्त आनन्दमें घुल-मिलकर आनन्द बन जाओगे। आनन्द फिर आनन्दसागर होगा—तुम्हारा हृदय आनन्द और कल्याणका सागर बन जायगा। उसमें जो कोई डुबकी लगायेगा, जो कोई उसमेंसे एक चुल्लू भी पी पायेगा, वही आनन्द और कल्याणरूप हो जायगा।

प्राप्ति तो दूर रही, ऐसे सन्तकी स्मृति ही पाप-ताप और अज्ञान-अहंकारका नाश करनेवाली है।

ऐसे सन्त संसारमें थोड़े हैं, पर वे थोड़े भी बहुत हैं। उनका अस्तित्व ही जगत्‌में मंगल और कल्याण बनाये हुए है। पाखण्डियोंका उन सन्तोंपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता; न पाखण्डी उनमें मिल ही सकते हैं। न पहचाननेवाले लोग काँचको हीरा भले ही समझ लें, परन्तु पहचाननेवालोंसे काँच-हीरेका भेद छिपा नहीं रहता! इतना होनेपर भी सन्तकी पहचान भगवत्कृपाप्राप्त सन्त ही कर सकते हैं। इतर लोग तो दम्भियोंके फन्देमें फँस ही जाते हैं। परन्तु जो सचमुच सन्तोंके आश्रयमें रहना चाहते हैं; उनको छिपे सन्त पथभ्रष्ट होनेसे बचाते भी हैं। सच्चेकी रक्षा भगवान् भी करते हैं। इसलिये सन्तदर्शनके सच्चे अभिलाषी बनो!

× × × ×

कदाचित् मनसे ही नकली सन्त बन रहे हो तो इस धोखेकी टट्टीको दूर फेंक दो। इसमें तुम्हारा और जगत्‌का—दोनोंका मंगल होगा। याद

रखो—परमात्माको धोखा देनेकी चेष्टा करनेवाला जितना धोखा खाता है, उतना धोखा प्रत्यक्ष पापीको नहीं खाना पड़ता।

× × × ×

सच्चे सन्तोंके चरणोंमें नमस्कार करो, उनका ध्यान करो, उनकी वाणीको वेदवाक्यसे बढ़कर समझो, उनके चरणरजको अपनी अमूल्य सम्पत्ति समझो, उनकी आज्ञाका प्राणपणसे पालन करो, उनकी इच्छाका अनुसरण करो, उनके इशारेपर उठो-बैठो। देखो, तुम्हारा कितना जल्दी मंगल होता है।

अन्धे-बहरे बन जाओ

अन्धे बन जाओ—परमात्माको छोड़कर और किसीको देखनेमें—दूसरा कुछ देखो ही मत। ऐसा न हो सके—जगत् दीखे तो कम-से-कम दूसरोंके दोषोंको, परायी स्त्रीको, लुभी दृष्टिसे भोगोंको, पराये पापोंको और जगत्‌की नित्यताको तो देखो ही मत।

× × × ×

बहरे बन जाओ—भगवान् और भगवान्‌के सम्बन्धी मधुर चर्चा, कीर्तन, गान आदिको छोड़कर और कुछ भी सुननेमें। जो कुछ सुनो—भगवन्नाम और भगवान्‌के तत्त्व और लीला-चरित्र ही सुनो। ऐसा न हो सके—और भी कुछ सुनना पड़े तो कम-से-कम ईश्वरनिन्दा, साधुनिन्दा, परनिन्दा, स्त्री-चर्चा, पराये अहितकी चर्चा, अपनी प्रशंसा, व्यर्थ बकवाद और चित्तको परमात्माके चिन्तनसे हटानेवाले शब्द तो सुनो ही मत।

× × × ×

गूँगे बन जाओ—भगवान् और भगवान्‌के सम्बन्धकी बातोंको छोड़कर अन्य कुछ भी बोलनेमें। जो कुछ बोलो, भगवान्‌के नाम और गुणोंकी चर्चा करो। ऐसा न हो सके—बिना बोले न रहा जाय तो

कम-से-कम असत्य, कपटपूर्ण, दूसरोंका अहित करनेवाले, परनिन्दाके, अपनी प्रशंसाके, व्यर्थ बकवादके और भगवान्‌में प्रीति न उपजानेवाले वचन तो बोलो ही मत।

× × × ×

लूले-लँगड़े बन जाओ—भगवान्‌के और भगवान्‌से सम्बन्ध रखनेवाले स्थानोंको छोड़कर और कहीं भी जानेमें—जहाँ भी जाओ भगवान्‌के प्रेमके लिये, उनकी सेवाके लिये उनके मन्दिरोंमें ही जाओ, चाहे उन मन्दिरोंमें मूर्ति हों या वे साधारण घर हों। ऐसा न हो सके—दूसरी जगह जाना ही पड़े तो कम-से-कम वेश्यालयमें, शराबखानेमें, जुआरियोंमें, कसाइयोंमें, परपीडकोंमें जहाँ भगवान्‌की, सन्तोंकी, धर्मकी, सदाचारकी निन्दा या इनके विरोधमें क्रिया होती हो ऐसे स्थानोंमें, जहाँ परनिन्दा और अपनी प्रशंसा हो ऐसी जगहोंमें तो जाओ ही मत।

सबके साथ आत्मवत् व्यवहार करो

सबपर दया करो, सबके दुःखोंको अपना दुःख समझो, सबके सुखी होनेमें ही सुखका अनुभव करो, परन्तु ममता और अहंकारसे सदा बचे रहो!

× × × ×

शरीरके किसी भी अंगमें सुख-दुःखकी प्राप्ति होनेपर जैसे उसका समान भावसे अनुभव होता है, वैसे ही प्राणिमात्रके सुख-दुःखकी प्राप्तिमें समता रखो, अपनेको समष्टिमें मिला दो।

× × × ×

अपने इस शरीरमें पर-भावना (दूसरेका है ऐसी भावना) करो और दूसरोंमें आत्मभावना करो, तभी तुम दूसरोंके सुख-दुःखमें सुखी-दुःखी हो सकोगे और तभी तुम उनके लिये अपना सर्वस्व त्याग सकोगे।

× × × ×

जैसे विषयी पुरुष अपनी आत्माके लिये (वह देहको ही आत्मा मानता है इसलिये कहा जा सकता है कि शरीर-सुखके लिये) माता, बन्धु, स्त्री, पुत्र, धर्म और ईश्वरतकका त्याग कर देता है, वैसे ही तुम विश्वरूप ईश्वर और विश्वात्माकी सेवारूप धर्मके लिये आनन्दसे अपने शरीर तथा शरीरसम्बन्धी समस्त सुखोंका सुखपूर्वक त्याग कर दो। विश्वात्माको ही अपनी आत्मा और विश्वको ही अपना देह समझो, परन्तु सावधान! ममता और अहंकार यहाँ भी न आने पावें! तुम जो कुछ करो, सच्चे प्रेमसे करो और वह प्रेम स्वार्थ-प्रेरित न होकर हेतुरहित हो, परमात्मासे प्रेरित हो। परमात्मासे प्रेरित विश्वप्रेम ही तुम्हारा एकमात्र स्वार्थ बन जाय।

× × × ×

सबके साथ आत्मवत् व्यवहार करो, किसीके द्वारा अपना बुरा हो जानेपर भी उसका बुरा मत चाहो। दाँतोंसे कभी जीभ कट जाय या अपने ही दाहिने पैरके जूतेकी ठोकर बायें पैरमें लगकर खून आने लगे तो क्या कोई बदलेमें दाँतोंको और पैरको कुछ भी चोट पहुँचाना चाहता है या उनपर नाराज होता है? यह जानता है कि जीभ और दाँत अथवा दाहिना-बायाँ दोनों पैर मेरे ही हैं। जीभ और बायें पैरको कष्ट हुआ सो तो हुआ ही, अब दाँत और दाहिने पैरको कोई दण्ड देकर कष्ट क्यों पहुँचाया जाय? क्योंकि वस्तुतः कष्ट तो सब मुझको ही होता है चाहे वह किसी भी अंगमें हो; इसी प्रकार तुम जब सबमें अपने ही आत्माको देखोगे, तब किसी भी प्राणीका—जो तुम्हारे साथ बुरा बर्ताव करता है, उसका भी बुरा तुमसे नहीं हो सकेगा। हाँ, जैसे दाँतोंसे एक बार जीभके कटनेपर या दाहिने पैरसे ठोकर लगनेपर, उन्हें कुछ भी बदलेमें कष्ट न देकर फिर ऐसा न हो इसके लिये मनुष्य सावधानीके साथ ऐसा प्रयत्न करता है कि जिसमें पुनः दाँतोंसे जीभको और पैरसे दूसरे पैरको चोट न पहुँचे, इसी प्रकार अपना बुरा करनेवाले दूसरोंको कुछ भी

नुकसान न पहुँचानेकी तनिक भी भावना न कर उन्हें शुद्ध व्यवहारके द्वारा सावधान जरूर करते रहो, जिससे पुनः वैसा न होने पावे।

× × × ×

याद रखो—बदला लेनेकी भावना परायेमें ही होती है; अपनेमें नहीं होती। जब तुम सारे विश्वमें आत्मभावना कर लोगे तब तुम्हारे अन्दर बदला लेनेकी भावना रहेगी ही नहीं। हाँ, जब किसी अंगमें कोई रोग होकर उसमें सड़न पैदा हो जाती है और जब उसके द्वारा सारे शरीरमें जहर फैलनेकी सम्भावना होती है तब जैसे उसके अन्दरका दूषित मवाद निकालकर उसे शुद्ध नीरोग और स्वस्थ बनानेके लिये ऑपरेशनकी जरूरत पड़ती है, वैसे ही कभी-कभी तुम्हें भी विश्वकी विशुद्ध हित-कामनासे उसके किसी अंगमें ऑपरेशन करनेकी जरूरत पड़ सकती है। परन्तु इस ऑपरेशनमें तुम्हारा वही भाव हो जो अपने अंगको कटानेमें होता है। अवश्य ही शुद्ध व्यवहार होनेपर वैसी जरूरत भी बहुत कम ही हुआ करती है!

तुम कौन हो ?

सोचो तुम कौन हो! जिस शरीरको तुम 'मैं' समझते हो और कभी-कभी कहते भी हो, 'मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ, मैं बीमार हो गया, मैं स्वस्थ हूँ आदि, वह शरीर ही क्या तुम हो ? याद करो—लड़कपनमें यह शरीर कैसा था; जवानीमें इसका क्या स्वरूप था और अब बुढ़ापेमें इसका सारा ही रंग-रूप बदल गया। जिसने लड़कपनमें इसको देखा था, वह तो अब इसे पहचान भी नहीं सकता। कहाँ वह नन्हें-नन्हें कोमल हाथ-पैर, मोहन मुखड़ा, दूध-से दाँत, भौंरोंके रंग-से काले-घुँघराले बाल और कहाँ आजका यह कुबड़ा शरीर, झुर्रियाँ पड़ी हुई चमड़ी, सफेद केश, चिपका मुँह, डरावनी सूरत। वह शरीर तो मर ही गया, उसका एक भी निशान

अब नहीं है; ऐसे शरीर ही क्या तुम हो ? नहीं, तुम यह नहीं हो, तुम तो वह हो जो इस शरीरको बाल, युवा और वृद्ध तीनों अवस्थाओंमें समानरूपसे जानता है। शरीर बदल गया परन्तु तुम नहीं बदले। शरीर जड है, तुम चेतन हो; शरीर बढ़ता है, तुम नहीं बढ़ते, शरीर क्षय होता है, तुम जैसे-के-तैसे हो; शरीर पैदा होता है और नष्ट हो जाता है, तुम सदा ही रहते हो। फिर तुम क्यों अपनेको शरीर समझते हो और क्यों शरीरके मान-अपमान, सुख-दुःख और जन्म-मरणमें अपना अपमान, सुख-दुःख और जन्म-मरण मानते हो; क्यों सचमुच यह तुम्हारी भूल है न ? अच्छा बताओ, क्या तुम 'नाम' हो ? नामकी पुकार सुनते ही सोतेमें बोल उठते हो, नामको कोई गाली देता है तो उसे सुनकर मारे शोकके रो पड़ते हो, मारे क्रोधके जलने लगते हो। जब तुम माँके गर्भमें थे, उस समय बताओ तुम्हारा क्या नाम था ? जब तुम जन्मे उस समय क्या तुम्हारा यह नाम था, जिस नामको आज तुम अपना स्वरूप समझते हो; नहीं था! क्या मरनेके बाद जहाँ जाओगे, वहाँ यही नाम रहेगा ? नहीं! फिर क्यों यह समझते हो कि मैं 'रामप्रसाद' हूँ ? यह तो रखा हुआ कल्पित नाम है जो अनित्य है, चाहे जब बदला जा सकता है। फिर इस नामकी निन्दा-स्तुतिमें तुम क्यों अपनी निन्दा-स्तुति समझते हो और क्यों दुःख-सुखका अनुभव करते हो ? यह भी तुम्हारा भ्रम ही है न ?

× × × ×

अच्छा, क्या तुम आँख, कान, नाक, जीभ, चमड़ी, पैर आदि इन्द्रियोंसे अपनेको कोई मानते हो ? यदि ऐसा है तो बताओ आँखें फूट जानेसे, नाक कट जानेसे, कान बहरे हो जानेसे या हाथ-पैर टूट जानेसे क्या तुम मर जाते हो ? नहीं। तो फिर तुम इन्द्रियाँ कैसे हुए ? तुम तो इनको, इनकी चेष्टाओंको और इनकी अच्छी-बुरी हालतको देखने और जाननेवाले हो; फिर इन्द्रियोंको अपना स्वरूप मानना तुम्हारी गलती नहीं तो और क्या है ?

× × × ×

ठीक, तुम अपनेको मन बतलाओगे! पर जरा सोचकर कहो, मनमें जब नाना प्रकारके विचार उठते हैं, तब तुम उनको जानते हो या नहीं? नहीं जानते, तो कहते कैसे हो कि 'मेरे मनमें अभी यह विचार आया था' और जानते हो तो यह निश्चय समझो कि जाननेवाला उस जानी हुई वस्तुसे अलग होता है। सुषुप्तिके समय मनका पता नहीं रहता, परन्तु तुम तो वहाँ रहते ही हो; क्योंकि तुम जागकर कहते हो कि मैं सुखसे सोया था। मन जहाँ-तहाँ भटकता है, तुम अपनी जगह अचल बैठे सदा उसकी हर एक चालको देखा करते हो, उसकी प्रत्येक बातको जानते हो, इसलिये तुम मन नहीं हो, तुम तो उसके द्रष्टा हो। फिर अपनेको मन मानना तुम्हारी भ्रान्ति ही तो है।

× × × ×

तुम बुद्धि भी नहीं हो; मनकी चालकी तरह बुद्धिकी भी प्रत्येक स्थितिको, उसके हर एक कार्यको और विकारको, उसकी नीचता-उच्चताको, अपवित्रता-पवित्रताको और उसके अच्छे-बुरे निर्णयको तुम जानते हो। उसमें ये सब बातें आती-जाती, बढ़ती-घटती रहती हैं, पर तुम सदा उसकी सारी हरकतोंको देखा ही करते हो। इसीसे कहा करते हो, 'मेरी बुद्धि उस समय बिगड़ गयी थी। सत्संगके प्रभावसे मेरी बुद्धिकी मलिनता जाती रही।' तब फिर तुम अपनेको बुद्धिका द्रष्टा न मानकर बुद्धि ही कैसे मानते हो? यह तुम्हारा भ्रम ही है!

× × × ×

तुम अहंकार भी नहीं हो—आत्मामें स्थित होकर तुम यदि अपनेको 'मैं' कहते हो तब तो ठीक था परन्तु तुम तो देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदिके समूहमें 'मैं-बुद्धि' करके अहंकार करते हो, वस्तुतः इस अहंकारके भी तुम द्रष्टा ही हो। इसीसे कहा करते हो 'मैंने भूलसे अहंकारके वश ऐसा कह दिया था।'

× × × ×

इसी प्रकार तुम प्राण भी नहीं हो, प्राणोंकी प्रत्येक चालके द्रष्टा

हो, प्राणोंकी प्रत्येक क्रिया और चेष्टामें जीवन देनेवाले हो। प्राण तुम्हारे आश्रित हैं। तुम प्राणोंके आधार हो—जीवन हो। प्राण नहीं हो! क्यों अब समझ गये न, कि तुम न देह हो, न नाम हो, न इन्द्रियाँ हो और न मन, बुद्धि और अहंकार हो और न प्राण हो। तुम शुद्ध, बुद्ध, नित्य, चेतन, आनन्दमय आत्मा हो; देहके नाशमें तुम्हारा नाश नहीं होता और देहके बननेमें तुम नये बनते नहीं। नामका महत्त्व और हीनत्व तुम्हें महान् और हीन नहीं बना सकता। तुम तो सदा निर्विकार हो! तुम्हें न कोई गाली दे सकता है, न तुम्हें मार सकता है और न तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट कर सकता है। तुम अपने स्वरूपमें सदा स्थिर अचल प्रतिष्ठित हो। इस बातको समझो और जगत्‌के द्वन्द्वोंसे अविचल रहो। यह स्वरूप-स्थिति ही तुम्हारी असली स्थिति है। इसको पा लेनेमें ही; पा लेना क्या, अपनी इस नित्य स्वरूप-स्थितिको जान लेनेमें ही तुम्हारी सफलता है। इसे जान लोगे तो तुम महात्मा बन जाओगे, नाम, रूप और इन्द्रिय, मन आदिको आत्मा मानना ही अधमत्व है और आत्माको अपने महत्-स्वरूपमें अविचल देखना ही महात्मापन है।

× × × ×

यह महात्मापन केवल ऊपर लिखी पंक्तियोंके लिखने-पढ़ने या कहना-सुनना जान लेनेसे ही नहीं प्राप्त होता। रटन्त तो तोता भी करता है। वेदान्तके सभी पढ़नेवाले इन बातोंको पढ़े होते हैं परन्तु इससे क्या होता है? असली जानना तो यह है जब शरीर, मन आदिसे अहंता-ममता सर्वथा हट जाय और सचमुच ही इनके हानि-लाभमें आत्माको कुछ भी हानि-लाभका अनुभव न हो और उसकी स्वरूप-स्थिति नित्य अच्युत रहे।

जगत्‌में लोग कहना सीख लेते हैं और लोगोंको सिखाने लगते हैं, परन्तु स्वयं वैसा करना, वैसा बनना नहीं सीखते। बने हुए कहलाना चाहते हैं, महात्मा बनकर पुजवाना चाहते हैं, परन्तु

वस्तुत: महात्मापन स्वीकार नहीं करना चाहते। इसीसे किसी मतविशेषके आग्रही बनकर कोरे उपदेशक रह जाते हैं। सुख-दु:खकी लहरोंमें बहनेवाले, अशान्तचित्त, माया-मोहित साधनहीन प्राणी रह जाते हैं। जिस समय शरीर, मन, वाणीसे सर्वथा पृथक् आत्माका स्वरूप निर्देश करते हुए उपदेश करते हो, उसी समय गहराईसे देखोगे तो पता चलेगा कि तुम्हारी स्थिति मनमें ही है, तुम उन्हींके सुख-दु:ख, मान-अपमानको अपना सुख-दु:ख, मान-अपमान समझकर हर्ष-शोककी मानसिक तरंगोंमें डूबते-उतराते रहते हो। यह दशा शोचनीय है। इससे अपनेको बचाओ, इससे निकलकर ऊपर उठो, बस, यही पुरुषार्थ है, यही साधन है, इसीमें लगे रहो! सच्चे साधक बनो—कहनेमात्रके सिद्ध महात्मा नहीं!

खेलो, परन्तु फँसो मत

इस खेलको नित्य और स्थिर समझकर फँसो नहीं। खेलते रहो, खूब खेलो, परन्तु चित्तको सदा स्थिर रखो अपने नित्य, सत्य, सनातन और कभी न बिछुड़नेवाले प्यारे प्रभुके चरणोंमें। इस खेलके साथी पति-पत्नी, पुत्र-कन्या, मित्र-बन्धु आदि सब खेलके लिये ही मिले हैं। इनका सम्बन्ध खेलभरका ही है। जब यह खेल खतम हो जायगा और दूसरा खेल शुरू होगा, तब दूसरे साथी मिलेंगे। यही सदासे होता आया है। इसलिये खेलके आज मिले हुए साथियोंको ही नित्यके संगी मानकर इनमें आसक्त न होओ; नहीं तो खेल छोड़कर नये खेलमें जाते समय तुमको और इन तुम्हारे साथियोंको बड़ा क्लेश होगा। जहाँ और जब, वह खेलका स्वामी भेजेगा, तब वहाँ जाना पड़ेगा ही; इस खेलमें और इस खेलके साथियोंमें मन फँसा रहेगा तो रोते हुए जाओगे।

× × × ×

तुम्हारा यह भ्रम ही है जो इस वर्तमान घर-द्वार, पुत्र-कन्या, भाई-बहिन, माता-पिता, पति-पत्नीको अपना मानते हो। इस जन्मके पहले जन्ममें भी तुम कहीं थे। वहाँ भी तुम्हारे घर-द्वार, सगे-सम्बन्धी सब थे; कभी पशु, कभी पक्षी, कभी देवता, कभी राक्षस और कभी मनुष्य, न मालूम कितने रूपोंमें तुम संसारमें खेले हो, परन्तु वे पुराने—पहले जन्मके घर-द्वार, साथी-संगी, स्वजन-आत्मीय अब कहाँ हैं; उन्हें जानते भी हो? कभी उनके लिये चिन्ता भी करते हो? तुम जिनके बहुत अपने थे, बड़े प्यारे थे, उनको धोखा देकर खेलके बीचमें ही उन्हें छोड़ आये, वे रोते ही रह गये और अब तुम उन्हें भूल ही गये हो! उस समय तुम भी आजकी तरह ही उन्हें प्यार करते थे, उन्हें छोड़नेमें तुम्हें भी कष्ट हुआ था, परन्तु जैसे आज तुम उन्हें भूल गये हो, वैसे ही वे भी नये खेलमें लगकर नये घर-द्वार, संगी-साथी पाकर तुम्हें भूल गये होंगे। यही होता है। फिर तुम इस भ्रममें क्यों पड़े हो कि इस संसारके घर-द्वार, इसके सगे-सम्बन्धी, यह शरीर मेरे हैं?

× × × ×

बच्चे खेलते हैं, मिट्टीके घर बनाते हैं, तेरा-मेरा करते हैं, जबतक खेलते हैं, तबतक! तेरे-मेरेके लिये लड़ते-झगड़ते भी हैं, परन्तु जब खेल समाप्त होनेका समय होता है, तब अपने ही हाथों उन धूल-मिट्टीके घरोंको ढहाकर हँसते हुए चले जाते हैं। तुम सयाने लोग धूल-मिट्टी—काँच-पत्थरके घरोंपर बच्चोंको लड़ते देखकर उन्हें मूर्ख समझते हो और उनकी मूर्खतापर हँसते हो—परन्तु तुम भी वही करते हो, वे भी मिट्टी-धूलके, काँच-पत्थरोंके लिये लड़ते हैं और तुम भी उन्हींके लिये लड़ते-झगड़ते हो। उनके घर छोटे और थोड़ी देरके खेलके लिये होते हैं, तुम्हारे घर उनसे कुछ बड़े और उनकी अपेक्षा अधिक कालके लिये होते हैं। तुम्हें उनकी मूर्खतापर न हँसकर अपनी मूर्खतापर ही हँसना चाहिये। उनसे

तुम्हारे अन्दर एक मूर्खता अधिक है वह यह कि वे तो खेलते समय ही तेरे-मेरेका आरोप करके लड़ते हैं, खेल खतम करनेके समय सबको ढहाकर हँसते हुए घर चले जाते हैं। परन्तु तुम तो खेल खतम होनेपर भी रोते हुए ही जाते हो; वहाँसे हटना चाहते ही नहीं, इसीलिये रोते जाना पड़ता है और इसीलिये अपने वास्तविक घर (परमात्मा)-में तुम नहीं पहुँच सकते। यदि तुम भी इन बच्चोंकी तरह खेलके समय तेरे-मेरे आरोप करके—(वस्तुतः अपना मानकर नहीं) मजेमें खेलो और खेल समाप्त होनेपर उसे खेल ही समझकर अपने मनसे सबको ढहाकर प्रसन्नतापूर्वक हँसते हुए वास्तविक घरकी ओर चल दो तो सीधे घर पहुँच जाओ और फिर वहाँसे लौटनेका अवसर ही न आवे। घरपर ही खूब मजेमें—बड़े आनन्दसे रहो। परन्तु खेल तो यही है कि तुमने इस खेलघरको असली घर मान लिया है और इसमें इतने फँस गये हो कि असली घरको भूल ही गये! मान लेनेमात्रसे यह घर और इसके रहनेवाले तुम्हारे ही-जैसे खेलनेको आये हुए लोग, जिनसे तुमने नाना प्रकारके नाते जोड़ लिये हैं, तुम्हारे होते भी नहीं; इन्हें अपना समझकर इनसे चिपटे हो, परन्तु बार-बार जबरदस्ती अलग किये जानेसे तुम्हें रोना-चिल्लाना पड़ता है। तुम्हारा स्वभाव ही हो गया है, हर एक खेलके संगी-साथियोंसे इसी प्रकार चिपटे रहना, दो घड़ीके लिये जहाँ भी जाते हो वहीं ममता फैलाकर बैठ जाते हो। इसीसे हर एक खेलमें तुम्हें रोना ही पड़ता है। न मालूम कितने लम्बे समयसे तुम इसी प्रकार रो रहे हो और न समझोगे तो न जाने कबतक रोते रहोगे। अच्छा हो यदि समझ जाओ और इस रोने-चिल्लानेसे—इस सदाकी साँसतसे तुम्हारा पीछा छूट जाय।

केवल परमात्मा ही हैं

सब जगह परमात्मा हैं, सबमें परमात्मा हैं, सब कुछ परमात्मा हैं, केवल परमात्मा ही हैं। असली बात यही है। तो भी पहले परमात्माको शुभमें देखो, कल्याणमें देखो, पवित्रतामें देखो, परोपकारमें देखो, सेवामें देखो, शुद्ध आचरणमें देखो, शुद्ध विचारोंमें देखो, सद्‌गुणोंमें देखो—यों देखते-देखते ज्यों-ज्यों बुद्धि बाह्यसे हटकर अन्तरकी ओर झुकने लगेगी, त्यों-ही-त्यों परमात्माकी झाँकी स्पष्ट होती जायगी और अन्तमें सब मिटकर केवल परमात्मा ही रह जायँगे।

परन्तु सबमें या सब कुछ परमात्मा ही हैं, इस विचारसे—या इस विचारकी भ्रान्तिसे पवित्र और शुभको छोड़कर केवल अमंगलमें, पापमें, पर-पीडनमें, अपवित्रतामें, हिंसामें, असत्यमें, व्यभिचारमें, अशुद्ध विचारोंमें और दुर्गुणोंमें परमात्माको देखनेका बहाना करोगे तो परमात्मा तो ध्यानमें नहीं रहेंगे—परमात्माके नामपर पापोंमें आसक्ति बढ़ती जायगी, जिसका परिणाम बहुत बुरा होगा!

× × ×

बुरा और अच्छा सब कुछ भगवान्‌से होता है, भगवान् ही बुरे और अच्छे बनते हैं, संसारमें जो कुछ होता है, सब भगवान्-ही-भगवान् हैं —यह सत्य-तत्त्व सद्विचारों और सत्कर्मोंके द्वारा अन्तः-करणकी शुद्धि होनेपर ही उपलब्ध होता है। नहीं तो, भगवान्‌के नामपर अपनी दुर्बलताओंका ही समर्थन होता है। सिद्धान्तका दुरुपयोग होता है और अपने-आपको धोखा दिया जाता है।

× × × ×

सदा-सर्वदा सत्यकी ओर झुकते रहो, सत्यका पालन करो, सत्यका विचार करो, सत्यका मनन करो, सत्यका व्यवहार करो, सत्यका आचरण करो, सत्य-अनुभव करो, सत्य कर्म करो, सत्य बोलो, सत्य

सुनो, जीवनको सत्यमय बनानेकी चेष्टा करो। यों करते-करते जब सत्यका सत्यस्वरूप तुम्हारे सामने प्रकाशित होगा, जब जीवन शुद्ध सत्यमय हो जायगा, तब केवल सत्य ही रह जायगा। तब आज जिसे असत्य मानकर छोड़नेको कहा जाता है, उसमें भी तुम्हें सत्य ही दीखेगा—उस सत्यका आजका यह असत्यस्वरूप उस समय सत्यमें बदल जायगा। नहीं, यह असत्य ही सत्य नहीं दीखेगा; यह असत्य रहेगा ही नहीं। यह मर जायगा। सदाके लिये मर जायगा! उस समय केवल सत्यका सत्यस्वरूप ही रह जायगा। आसक्ति, कामना, द्वेष, क्रोध, लोभ, मोह, भय, ईर्ष्या, विषाद आदि असत्यके विभिन्न स्वरूप उस समय नष्ट ही हो जायँगे। उनकी छाया भी नहीं रहेगी। उस समय यदि इनकी कहीं लीला होगी, तो वह सत्यका ही एक स्वेच्छासे रचा हुआ स्वाँग होगा, जो असत्यकी बाढ़को रोककर सत्यकी रक्षा, सत्यके विस्तार, सत्यके सम्पादन, सत्यके प्रकाश और सत्यको सत्यरूपमें दर्शन करानेके लिये ही होगा। वह सत्यकी ही सत्यप्रेरित सत्यसे ओत-प्रोत सत्य लीला होगी। उसमें और आजके इस असत्याच्छादित अज्ञानरूप, मोहरूप, पापरूप, विषादरूप, भयरूप सत्यमें जो मूलतः सत्य होनेपर भी असत्यका ही मूर्तरूप है—उतना ही अन्तर है जितना सत्य और असत्यमें होता है। इसीको सत्य मानकर यदि भ्रममें रहोगे तो यथार्थ दर्शन दुर्लभ ही रहेंगे।

× × × ×

यह सत्य ही परमात्मा है, भगवान् है, सब समय है, सबमें है और सब कुछ है। इस सत्यकी उपलब्धिके लिये ही अनन्त जीवनका अनन्त कर्मप्रवाह है। इस सत्यको पाना ही मुक्ति है, जीवनकी सफलता है और भगवत्-साक्षात्कार है। यह सत्य है कि यह सत्य नित्य और सर्वत्र है। यह भी सत्य है कि सत्यके सिवा और कहीं कुछ भी सत्य नहीं हैं; परन्तु जबतक हमें सत्यके समग्र स्वरूपका अनुभव नहीं होता, तबतक सत्यका सत्यमय सत्यस्वरूप हमारे सामने अप्रकाशित ही रहता है। सब

कुछको सत्य बताने या सत्यके सिवा कुछ भी नहीं है, ऐसा कहने जाकर हम सत्यके एक मलिनांशको जिसको हमने ही अपनी स्वाश्रित भूलसे मलिन कर डाला है, समग्र सत्य समझकर सत्यस्वरूप सम्पूर्ण सत्यके प्रकाशित होनेके मार्गमें बाधक हो जाते हैं। हम आप ही अपनेको धोखा देते हैं। हमारे इस मोहभंगके लिये—भूलको मिटानेके लिये हमें प्रयत्न करना आवश्यक है। यह कहा जा सकता है कि जो है ही नहीं उसको मिटानेका प्रयत्न करना भी भूल ही है, परन्तु इस भूलसे ही वह भूल कटेगी; जो सत्यके सिवा कुछ अन्य न होनेपर भी हमें सत्यके समग्ररूपकी उपलब्धि करनेमें बाधक हो रही है। अतएव सत्यको प्रकाशित करनेवाला होनेके कारण यह 'प्रयत्न' भूल नहीं है। यह भी सत्य ही है। किसी वस्तुका सत्यस्वरूप समझमें आनेपर उसके सम्बन्धकी भ्रान्ति अपने-आप ही मिट जाती है, इसलिये सत्यस्वरूपको समझनेमें सहायक होनेके कारण यह 'प्रयत्न' सत्य ही है। वह प्रयत्न है—बुरेको छोड़कर, असत्‌को त्यागकर, सत्‌को ग्रहण करना, सदाचार और सद्विचारपरायण होकर सत्कर्म करना, अभिमान और दम्भ छोड़कर भगवान्‌की भक्ति करना और साधन चतुष्टय—विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति और मुमुक्षुत्वको प्राप्त करके तत्त्वको जाननेकी चेष्टा करना।

× × × ×

जबतक तुम्हें यह ज्ञान है कि यह 'बुरा' है और वह 'भला' तबतक तुम बुरे-भलेको एक नहीं बता सकते। अतएव यदि अपना कल्याण चाहते हो, सचमुच ही शान्त और सुखी होना चाहते हो, सबमें सर्वत्र, सब समय परमात्माको देखना चाहते हो, नित्य अभिन्नरूपसे एकमात्र परमात्माका ही अनुभव करना चाहते हो तो अच्छा-बुरा सब कुछ परमात्मा ही है, यह कहना छोड़ दो और शुद्ध कर्म, श्रद्धायुक्त भक्ति और विवेक-विरागयुक्त होकर तत्त्वज्ञानके सम्पादनके लिये प्राणपणसे साधना करो। भगवान् तुम्हारा कल्याण करेंगे।

सदा सन्तुष्ट रहो

जगत्की सम्पत्ति जितनी ही बढ़ेगी, उतनी ही अभावकी वृद्धि होगी। जिसके पास दस-बीस रुपये हैं, उसको सौ-पचासकी चाह होती है; परन्तु जिसके पास लाखों हैं, वह करोड़ोंकी चाह करता है। इसलिये सम्पत्ति बढ़ानेकी चाह करना प्रकारान्तरसे अभाव बढ़ानेकी चाह करना है। याद रखो—अधिक पानेसे तुम्हें सुख नहीं होगा, वरन् झंझट, कष्ट, तथा दुःख बढ़ेंगे ही।

× × × ×

अभिमानमें भले ही भरे रहो कि मेरे इतने गाँव और इतने महल हैं, परन्तु अपने बैठनेको जगह उतनी ही काममें आवेगी, जितनीमें शरीर रह सकता है। खाओगे भी उतना ही, जितना सदा खाते हो। हाँ, इतना जरूर है कि अधिक सुविधा होनेपर कुछ बढ़िया चीजें खा लोगे; परन्तु मेहनत न करनेके कारण उन्हें पचा न सकोगे, जिससे कुछ समयके बाद उतना खानेयोग्य भी नहीं रह जाओगे।

× × × ×

यश, कीर्ति और सम्मान आदि अधिक बढ़ेंगे तो यह भय भी सदा जलाया करेगा कि कहीं अयश, अकीर्ति और अपमान न हो जाय। जितना बड़प्पन होगा—उतना ही गिरनेमें अधिक कष्ट होगा, जितने ऊँचे होओगे, नीचे गिरनेपर उतनी ही चोट अधिक लगेगी। इसलिये धन, मान, यश आदिके बढ़ानेकी चिन्ता छोड़कर भगवान्की चिन्ता करो जिससे तुम्हारा यथार्थ कल्याण हो।

× × × ×

खूब समझ लो और इस बातपर विश्वास करो कि धनी, मानी, अधिकारारूढ़ और विषयोंसे अधिक सम्पन्न लोग सुखी नहीं हैं, उनके चित्तमें शान्ति नहीं है। उनकी परिस्थिति और भी भयानक है; क्योंकि

उनके अभाव भी उतने ही अधिक बढ़े हुए हैं। यह निश्चय है कि जहाँ अभाव है, वहीं अशान्ति है और जहाँ अशान्ति है, वहीं दुःख है।

संसारके हानि-लाभकी परवाह न करो। जो काम सामने आ जाय, यदि अन्तरात्मा उस कामको अच्छा बतावे तो अपनी जैसी बुद्धि हो, उसीके अनुसार शुद्धभावसे सबका कल्याण देखकर उसे करो, परन्तु यह कभी न भूलो कि यह सब खेल है। अनन्त महासागरकी लहरें हैं। तुम अपनेको सदा इनसे ऊँचेपर रखो। कार्य करो, परन्तु फँसकर नहीं, उसमें राग-द्वेष करके नहीं। आ गया सो कर लिया। फिर उससे कुछ भी मतलब नहीं। न आता तो भी कोई आवश्यकता नहीं थी।

× × × ×

अपनेको सदा आनन्दमें डुबाये रखो—दुःखकी कल्पना ही तुम्हें दुःख देती है। मान लो एक आदमी गाली देता है, तुम समझते हो मुझको गाली देता है इसलिये दुःखी होते हो, उसे बुरा समझते हो, उसपर द्वेष करते हो, उससे बदला लेना चाहते हो। परन्तु सोचो तो सही वह तुम्हें गालियाँ देता है या किसी जडपिण्डको लक्ष्य करके किसी कल्पित नामसे गालियाँ देता है। क्या 'नाम' और 'शरीर' तुम हो जो गालियाँ सुनकर रोष करते हो? तुम्हें कोई गाली दे ही नहीं सकता। तुम्हारा अपमान कभी हो ही नहीं सकता!

× × × ×

यदि कोई ऐसी भाषामें गाली दे, जिसे तुम नहीं समझते तो तुम्हें गुस्सा नहीं आता। फिर क्यों नहीं तुम यह समझ लेते कि वह जिस भाषामें गाली देता है, उसका अर्थ दूसरा ही है। तुम उसे गाली ही क्यों समझते हो? गाली समझते हो तभी दुःख होता है। आशीर्वाद समझो—अपने मनकी किसी अच्छी कल्पनाके अनुसार उसको शुभरूप दे दो तो तुम्हें दुःख हो ही नहीं।

× × × ×

सदा शान्त रहो, निर्विकार रहो, सम रहनेकी चेष्टा करो। जगत्‌के खेलसे अपनेको प्रभावित मत होने दो। खेलको खेल ही समझो। तुम सदा सुखी रहोगे। फिर न कुछ बढ़ानेकी इच्छा होगी और न घटनेपर दुःख होगा।

× × × ×

जो कुछ है, उसीमें सन्तुष्ट रहो और असली लक्ष्य श्रीपरमात्माको कभी न भूलो। याद रखो—यहाँकी बनने-बिगड़नेकी लीलासे तुम्हारा वास्तवमें कुछ भी नहीं बनता-बिगड़ता। फिर तुम विशेष बनाने जाकर व्यर्थ ही क्यों संकट मोल लेते हो।

× × × ×

भगवान्‌को याद करो, भगवान्‌में प्रेम करो, भगवान्‌को जीवनका लक्ष्य बनाओ, भगवान्‌की ओर बढ़ो। तुम्हें फुरसत ही नहीं मिलनी चाहिये भगवान्‌के स्मरण, चिन्तन और भगवत्कार्यसे। जगत्‌का जो कुछ आवश्यक काम हो, जिसके किये बिना न चलता हो, उसे भी भगवान्‌का स्मरण करते हुए भगवान्‌का कार्य समझकर ही करो और सदा सभी अवस्थाओंमें सन्तुष्ट रहो। तृप्त रहो।

सुख-शान्तिके भण्डार भगवान् हैं

संसारमें जो कुछ भी ऐश्वर्य, माधुर्य, सौन्दर्य, शक्ति, श्री, शौर्य, सुख, तेज, सम्पत्ति, स्नेह, प्रेम, अनुराग, भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, रस, तत्त्व, गुण, माहात्म्य आदि देखते हो, सब वहींसे आता है जहाँ इनका अटूट भण्डार है। अनादिकालसे अबतक इस भण्डारमेंसे लगातार इन सारी वस्तुओंका वितरण हो रहा है और अनन्त कालतक होता रहेगा; परन्तु इस महान् वितरणसे उस भण्डारका एक तिलभर स्थान भी खाली न होगा। वह सदा पूर्ण, अनन्त और असीम ही रहेगा। जानते हो वह भण्डार कहाँ है और उसका क्या

स्वरूप है? नहीं जानते; जानते होते तो भला उस अनन्त भण्डारको छोड़कर क्षुद्र और तुच्छ-सी चीजोंपर क्यों मरे फिरते?

वह भण्डार हैं भगवान्, और वे सभी जगह हैं; उनका महत्त्व और उनका तत्त्व जाननेकी चेष्टा करो; जरा-सी भी उनके महत्त्वकी झाँकी हो जायगी, उनके तत्त्वका ज्ञान हो जायगा, तो फिर तुम्हें दूसरी कोई चीज सुहायेगी ही नहीं। उनके सौन्दर्य-माधुर्यकी जरा-सी छाया भी कहीं दीख जायगी तो फिर जगत्‌का सारा सौन्दर्य-माधुर्य चित्तसे सदाके लिये हट जायगा।

× × × ×

तुम जो उनका चिन्तन छोड़कर विषय-चिन्तन करते हो, एकमात्र उन्हें ही पानेकी कामना न रखकर विषयोंकी कामना करते हो, उन्हींके बलपर सर्वथा निर्भर न रहकर जगत्‌के जड-बलका आश्रय ग्रहण करना चाहते हो, उनके कृपाकणसे ही अपनेको परम धनी न मानकर दुनियाकी दिखावटी और क्षण-क्षणमें नाश होनेवाली धन-सम्पत्तिका मोह करते हो; उनके दासत्वका महान् पद पानेकी अनन्त कीर्तिका तिरस्कार कर दीवानी दुनियामें नाम कमाना चाहते हो और उनके नित्य-सान्निध्यमें रहनेपर भी अपनेको असहाय समझते हो, इससे यही सिद्ध होता है कि तुमने उनका महत्त्व और प्रभाव कुछ भी नहीं जाना!

× × × ×

विश्वास करो और समझो कि वे सच्चिदानन्दघन हैं, नित्य हैं। परम पवित्र हैं, सब ईश्वरोंके ईश्वर हैं—परम प्रभु हैं; सबमें, सब जगह, सर्वदा और सर्वथा व्याप्त हैं, सारा उन्हींका पसारा है, वे तुम्हारे अपने हैं, तुम उनके निजजन हो, परम आत्मीय हो, वे नित्य तुम्हारे साथ—सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते—सदा ही रहते हैं, एक क्षणके लिये भी तुमसे अलग नहीं होते! उन्हें जानो, देखो और पहचानो! तुम्हारे सारे अभाव मिट जायँगे। तुम्हारे सब दुःखोंका सदाके लिये

नाश हो जायगा। तुम्हें परम शान्ति मिल जायगी! फिर जगत्‌की कोई भी स्थिति—मृत्यु भी तुम्हें डरा न सकेगी! तुम नित्य निर्भर और सर्वथा निरामय हो जाओ।

× × × ×

उन परम प्रियतम सच्चिदानन्दघन प्रभुको जानने, देखने और पहचाननेका सबसे पहला साधन है परम श्रद्धा। जिन अनुभवी महात्माओंने भगवान्‌को जाना, देखा और पहचाना है, उनके वचनोंपर श्रद्धा करो। शास्त्रोंने भगवान्‌को जानने, देखने और पहचाननेके जो साधन बतलाये हैं उनपर श्रद्धा करो। ज्यों-ज्यों तुम्हारी श्रद्धा बढ़ेगी, त्यों-ही-त्यों तुम्हें भगवान्‌का प्रकाश समीप आता हुआ दिखायी देगा। तुम अपने अन्दर एक प्रकारके आनन्द और शान्तिका अनुभव करोगे, जिससे साधन और भजनमें तुम्हारा मन अधिकाधिक लगता जायगा। और ज्यों-ज्यों भजन बढ़ेगा, त्यों-ही-त्यों तुम भगवान्‌को कुछ-कुछ जानने, देखने और पहचानने लगोगे। साधनकी जननी श्रद्धा है। श्रद्धा है तो सब कुछ है, श्रद्धा नहीं तो कुछ भी नहीं, क्योंकि श्रद्धाहीनको वस्तुका अस्तित्व ही स्वीकार नहीं होता तब वह उसे पावे तो कैसे?

× × × ×

याद रखो, श्रद्धासे सच्चा भजन होता है और भजन होनेसे ही सच्ची श्रद्धा भी होती है। सत्संगके द्वारा श्रद्धा बढ़ाओ और साथ ही भजन करके श्रद्धाको उज्ज्वल, निर्मल, सात्त्विक और अनन्य बना लो। फिर जो भजन होगा, वह भगवान्‌को तुरन्त प्राप्त करनेवाला होगा। भजनमें बड़ी शक्ति है। भजनकी सीधी विधि है भगवान्‌को निरन्तर याद रखना और उन्हें याद रखते हुए उनकी सेवाके भावसे ही संसारके आवश्यक कार्य करना। उनका स्मरण हृदयमें सदा अखण्डरूपसे बना रहना चाहिये। अखण्ड स्मरण होने लगे तो समझो तुमपर भगवान्‌की बड़ी भारी कृपा है;

अब तुम उस कृपाके बलसे निहाल होनेवाले हो। जबतक अखण्ड स्मरण न हो तबतक बार-बार अभ्यासके द्वारा स्मरणकी चेष्टा करो। नाम-जपका नियम कर लो और मनको और जगहोंमें जानेसे रोकनेकी सतत चेष्टा करते हुए उसे भगवान्‌में लगाते रहो। अभ्यास करते-करते भगवान्‌की कृपासे मन भगवान्‌में लग ही जायगा।

× × × ×

मन तभीतक भगवान्‌में नहीं लग रहा है, जबतक कि उसे आनन्द नहीं आता; जिस दिन जरा भी आनन्द आ जायगा, उस दिनसे तो फिर यह वहाँसे हटाये भी नहीं हटना चाहेगा; क्योंकि उस आनन्दके एक कणके साथ भी जगत्‌के बड़े-से-बड़े आनन्दकी तुलना नहीं हो सकती। वह आनन्द अत्यन्त विलक्षण होता है।

× × × ×

भजनमें श्रद्धा करो। यह विश्वास करो कि भजनसे ही सब कुछ होगा। भजनके बिना न संसारके क्लेश मिटेंगे, न विषयोंसे वैराग्य होगा, न भगवान्‌का प्रभाव और महत्त्व समझमें आवेगा और न परम श्रद्धा ही होगी। भगवान्‌की प्राप्ति तो भजनके बिना असम्भव ही है। और सच्ची बात यह है कि जबतक भगवान्‌की प्राप्ति नहीं होती, तबतक क्लेशोंका पूर्णरूपसे नाश हो भी नहीं सकता।

× × × ×

भगवान्‌की प्राप्तिके इस कार्यमें जरा देर न करो। ऐसा मत सोचो कि 'अमुक काम हो जायगा, इस प्रकारकी स्थिति हो जायगी, तब भगवान्‌का भजन करूँगा' यह तो मनका धोखा है। सम्भव है तुम्हारी वैसी स्थिति हो ही नहीं, तुम पहले ही मर जाओ। अथवा यदि स्थिति हो जाय तो फिर किसी दूसरी स्थितिकी कल्पना कर लो। इससे अभी जिस स्थितिमें हो, इसी स्थितिमें भगवान्‌की

प्राप्तिके लिये भजनमें लग जाओ। मनुष्य-जीवनका सबसे ऊँचा ध्येय एकमात्र यही है।

× × × ×

एक बात और है, जबतक तुम भजनके लिये किसी संसारी स्थितिकी प्रतीक्षा करते हो, तबतक तुम वास्तवमें भजन करना चाहते ही नहीं। यदि भजन करना चाहते तो भजनसे बढ़कर ऐसी कौन-सी स्थिति है जिसके लिये तुम भजनको रोककर पहले उसे पाना चाहते। संसारके धन-जन, मान-सम्मान, पद-गौरव सभी विनाशी हैं। वे किसीके सदा रहते नहीं और जिन्हें ये सब प्राप्त हैं, वे क्या सुखी हैं? उन्हें क्या शान्ति मिल गयी है? उनके जीवनका उद्देश्य क्या सफल हो रहा है? वे क्या इन्हें प्राप्त करके भजनमें लग गये हैं? बल्कि इसके विपरीत अनुभव तो यह कहता है कि ज्यों-ज्यों सांसारिक संग्रह बढ़ता है, त्यों-ही-त्यों क्लेश, कामना, द्वेष, अशान्ति, अज्ञान, असावधानी और विषयासक्ति बढ़ती है। और विषयासक्त पुरुष कभी सुख-शान्तिके भण्डार परमात्माके मार्गपर नहीं चलना चाहता।

× × × ×

विषय-सुखमें फँसे हुए मनुष्यको तो एक प्रकारसे पागल या मूढ़ समझना चाहिये जो काल्पनिक और विनाशी सुखके मोहमें सच्चे सुखसे वंचित रह जाता है। सच्चा सुख तो भगवान्में है, जो भगवान्का स्वरूप ही है। उसको छोड़कर क्षणस्थायी, परिवर्तनशील दुःखभरे भोगोंमें सुख चाहना तो मतिभ्रम ही है। बुद्धिमेंसे इस भीषण भ्रमको निकालना पड़ेगा। विषय-सुखके भ्रमसे ही विषयोंमें आसक्ति हो रही है। इस विषयासक्तिके कारण ही मनुष्य दूसरोंमें दोषारोपण करता है, जान-बूझकर झूठ बोलता है, परपीडा और हिंसा करता है, परस्त्रियोंमें पापबुद्धि करता है, दम्भ और पाखण्ड रचता है एवं नाना प्रकारके नये-नये तरीके निकालकर

कोई कार्य न करो, जिसका बुरा असर मनपर पड़े और मनपर अंकित बुरे दृश्य तुम्हें आगे चलकर दुर्गतिकी ओर ढकेल दें।

× × × ×

याद रखो, मनको साथ लेकर इन्द्रियाँ जो कुछ भी कार्य करती हैं, उनके चित्र मनपर वैसे ही हूबहू अंकित हो जाते हैं, जैसे बोलनेवाले सिनेमाके फिल्ममें समस्त दृश्य और स्वरकम्पनके अनुसार सब प्रकारके स्वर। और जैसे मशीनपर चढ़ते ही बिजलीके प्रकाशसे वे सारे दृश्य सामने आ जाते हैं और स्वर सुनायी देने लगते हैं और देखने-सुननेवालोंके चित्तको आकर्षित करते हैं, वैसे ही तुम्हारे मनपर अंकित सब घटनाएँ स्मृतिपथमें उदय होकर तुम्हें वैसा ही उनके लिये प्रेरणा करती हैं और अपने अनुकूल वायुमण्डल पाकर तो बाध्य भी करती हैं।

× × × ×

अतएव किसी भी इन्द्रियसे बुरा कार्य जरा भी न करो। इन्द्रियाँ संयत होनेसे मनका संयम बहुत आसानीसे हो जाता है। मनका संयम होनेके बाद तो इन्द्रियोंका संयम स्वयमेव हो जाता है; परन्तु मनका संयम इन्द्रियोंके निगृहीत हुए बिना होना बहुत ही कठिन है। और सच बात तो यह है कि मनका असंयम ही सारी बुराइयोंकी जड़ है और मनका संयम ही समस्त सिद्धियोंकी लीलाभूमि है। मनके संयमके लिये इन्द्रियोंको बुरे विषयोंसे हटाकर—पहले-पहल जबरदस्ती भी—भगवत्सम्बन्धी विषयोंमें लगाना चाहिये।

× × × ×

मनके संयमका असली अर्थ मनका पूर्णरूपसे भगवान्‌में लग जाना है, शून्य हो जाना नहीं। इसीलिये सारी साधना है। भगवान्‌का महत्त्व, प्रभाव और तत्त्व जाननेके बाद तो बुद्धि अपने-आप ही उधर खिंच जाती है और बुद्धि यदि एकाग्र और निश्चयात्मिका

हो जाती है तो फिर मनका तदाकार होना सहज है। और यहाँ तो भगवान् वस्तुत: एक ऐसे परम अर्थ हैं जो ऐश्वर्य, सौन्दर्य, माधुर्य आदिमें सर्वथा अनुपम हैं। उनकी ओर एक बार लगनेमें ही कठिनाई है। एक बार लग जानेपर तो फिर वहाँसे हटना ही कठिन हो जायगा।

मनको विशुद्ध करो

सारा संसार मनके ही आधारपर स्थित है और मनके ही अनुसार तुम्हें उसका रंग-रूप भी दिखलायी देता है। तुम्हारा मन यदि शुद्ध है तो तुम्हें जगत्में भी शुद्धपन अधिक दीखेगा! याद रखो—जिनको अपने मनमें भगवान् विराजमान दीखते हैं, उन्हें सारे जगत्में भगवान् दीख सकते हैं और जिनके मनमें पाप भरे हैं, उनको जगत् पापोंसे भरा दीखता है। जीवन्मुक्त महापुरुष समस्त संसारको ब्रह्ममय देखते हैं, भक्त जगत्को भगवान्से परिपूर्ण पाते हैं और इसीलिये सर्वत्र तथा सर्वदा परम शान्ति और परम आनन्दको प्राप्त रहते हैं।

× × × ×

यदि सुख और शान्ति पाना चाहते हो तो पहले मनमें सुख और शान्तिकी मूर्तियाँ स्थापन करनेकी चेष्टा करो। अपने मनके विचारके अनुसार वस्तु तुम्हें प्राप्त होगी और तुम भी वैसे ही बन जाओगे। तुम यदि निश्चय कर लो कि पाप-ताप न तो तुम्हारे अन्दर हैं और न कभी तुम्हारे समीप आ सकते हैं तो निश्चय समझो कि पाप-ताप तुम्हारे पाससे भाग जायँगे—इतना ही नहीं, तुम जहाँ भी जाओगे वहाँ दूसरोंके पाप-तापोंको भी भगा सकोगे।

× × × ×

तुम अपने मनमें निश्चय करो कि मैं सदा-सर्वदा भगवान्की

संरक्षकतामें हूँ। भगवान् कभी भी मुझको अकेला नहीं छोड़ते, वे निरन्तर मेरे बाहर-भीतर सर्वत्र विराजित रहते हैं। भगवान्‌की इस नित्यसन्निधिके प्रभावसे पाप-ताप मेरे पास आ ही नहीं सकते। काम-क्रोधादिका प्रवेश मेरे मनमें कभी हो ही नहीं सकता। मैं नित्य शुद्ध हूँ, निष्पाप हूँ, दुर्विचार और दुर्गुणोंसे सर्वथा रहित हूँ, मन तथा शरीरसे नीरोग एवं बलवान् हूँ और नित्य आनन्दको प्राप्त हूँ। इस प्रकारकी धारणा बारम्बार करते रहो। कुछ ही समयमें देखोगे—तुम वास्तवमें ऐसे ही बनते जा रहे हो।

× × × ×

यह सत्य है और ध्रुव सत्य है कि भगवान् तुम्हारे साथ हैं, वे सर्वथा तुम्हारा संरक्षण करते हैं। और आत्मदृष्टिसे तुम्हारा स्वरूप भी नित्य-शुद्ध-बुद्ध और निष्पाप है। तुम इस सत्य तत्त्वको भूलकर अपनेको पापात्मा, दोष और कुविचारोंसे युक्त, निर्बल और असहाय मान बैठे हो, और ऐसा मानते-मानते वस्तुतः ऐसे ही हो भी चले हो। अब इसके विपरीत अभ्यास करो, प्रतिपल भगवान्‌का, भगवान्‌की कृपाका और भगवान्‌की शक्तिका अपने अन्दर अनुभव करो।

× × × ×

इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम पाप करते रहो, दुष्ट विचार और दुर्गुणोंमें प्रीति करके उन्हें बढ़ाते रहो, भगवान्‌को न मानकर पार्थिव पदार्थोंपर अभिमान करो और ऐसा करते हुए भी अपनेको शक्तिमान् और बलवान् मान बैठो और भगवान्‌को भूलकर केवल अहंकारमें ही डूबे रहो। मनके शुभ निश्चयके अनुसार ही शुभ आचरण भी करो। यह सत्य है कि भगवान्‌की कृपाके बलसे तुम्हारे मनका निश्चय अटल हो जायगा और तुम्हारे आचरण अपने-आप शुभ बनने लगेंगे, परन्तु तुम नित्य उस कृपाका अनुभव करते रहो और कृपाके बलसे तमाम बुराइयोंको हटाते हुए कल्याणके मार्गमें बढ़ते रहो! दुष्ट विचार-दुर्गुण और दुष्टकर्मोंको त्यागकर प्रभुस्मरण,

अहिंसा, सत्य, क्षमा, सन्तोष, प्रेम, दया, सेवा, समता, सरलता और परहित-रति आदि शुभ विचार, सद्‌गुण और सत्कर्मोंके ग्रहण करनेपर कहीं विपत्ति आ जाय, बड़े भारी संकटका सामना करना पड़े तो घबराकर इन्हें छोड़ मत दो, मनमें जरा भी ऐसा सन्देह न आने दो कि अशुभको छोड़कर शुभको ग्रहण करनेसे ऐसा हुआ है। विश्वास रखो—ये विपत्ति और संकट वास्तवमें विपत्ति और संकट नहीं हैं, ये तो भगवान्‌के भेजे हुए तुम्हारे मददगार हैं जो विपत्ति और संकटका स्वाँग भरकर कसौटीमें कस-कसकर तुम्हें सर्वथा निर्दोष बनानेके लिये आये हैं। इन्हें देखकर घबराओ मत। इनका स्वागत करो और अपनी सरल, शुभ और अटल साधनासे अपनी चालपर सुदृढ़ रहकर—इनके नकली स्वाँगको हटाकर इन्हें अपने सच्चे सहायकके रूपमें प्राप्त कर लो।

× × × ×

याद रखो—साधनामार्गके ये संकट तुम्हें शीघ्र-से-शीघ्र मुक्ति-मन्दिरमें ले जानेवाले, भगवान्‌के शीघ्र दर्शन करानेवाले और तुम्हारी साधनाको पूर्णतया सफल बनानेवाले हैं। घबराहट, विषाद, भय, आलस्य और संशय आदि ही वास्तविक विघ्न हैं, उन्हींसे बचो।

× × × ×

भगवान्‌के पावन मार्गमें सबसे बड़े विघ्न तीन हैं—विषयभोगोंकी कामना, मान-बड़ाईका मोह और अश्रद्धा। जहाँतक हो सके इन तीनोंसे बचो। बुरे विचार, बुरे गुण और बुरे कर्म तबतक पूरी तौरसे नहीं मिटेंगे जबतक ये तीनों रहेंगे। भगवान् ही एकमात्र प्राप्त करनेयोग्य वस्तु हैं। मान-बड़ाईका मोह हमें बार-बार मृत्युके मुखमें ले जानेवाला है और अश्रद्धा सारे परमार्थविचारोंका नाश करनेवाली है, बार-बार ऐसा विचार करके मान-बड़ाईके मोह तथा अश्रद्धाका त्याग करो और एकमात्र भगवान्‌को प्राप्त करनेकी साधनामें लग

जाओ और भगवान्‌की सर्वत्र सत्ता, उनकी कृपा और उनकी शक्तिपर विश्वास करनेसे सहज ही तुम ऐसा कर सकोगे।

× × × ×

मनको विशुद्ध बनाते रहोगे, बुरी भावनाओंका त्याग करते रहोगे तो भगवान्‌की कृपाका अनुभव तुम्हें होगा ही। निरन्तर सद्‌भावनाओंको मनमें लानेकी चेष्टा करो। सद्‌भावनाओंके आते ही बुरी भावनाएँ अपने-आप नष्ट हो जायँगी। सद्‌भावनाओंसे सद्‌गुणोंकी और सत्कर्मोंकी वृद्धि होगी और तुम परम शान्ति और परमानन्दको प्राप्त कर सकोगे। याद रखो—परम शान्ति और आनन्द एक भगवान्‌में ही हैं और भगवान् तुमसे कभी अलग नहीं हैं, वे नित्य तुम्हारे साथ हैं, तुमपर नित्य उनकी कृपाकी अनवरत वर्षा हो रही है, तुम सदा उनकी कल्याणमयी छत्र-छायामें हो, तुम्हारा सारा फिक्र उनको है और वे ही स्वयं नित्य तुम्हारा योगक्षेम वहन कर रहे हैं।

परमात्माका स्वरूप सत्य है

परमात्माका स्वरूप सत्य है। जहाँ सत्य है वहीं निर्भयता है। सत्य ही मानव-जीवनका लक्ष्य है और सत्य ही साधन है, अतएव सत्यका सेवन करो। विचारमें सत्य, व्यवहारमें सत्य, क्रियामें सत्य और वाणीमें सत्य—सर्वत्र सत्यका ही सेवन करो।

× × × ×

यह मत सोचो कि सत्यके सेवनसे हानि होगी। सत्य कभी हानिकारक हो ही नहीं सकता। असत्यमें सनी हुई बुद्धि तुम्हें धोखेसे यह समझाना चाहती है कि सत्यसे हानि होगी। सत्यका आचरण करो, उससे बुद्धि भी शुद्ध हो जायगी।

× × × ×

सत्य वही सुन्दर है जो सबके लिये कल्याणकारी है। और सत्य

वस्तुतः कल्याणका विरोधी होता ही नहीं। जिस सत्यमें अकल्याण छिपा रहता है, वह सत्य ही नहीं है।

× × × ×

जिसके मनमें सत्य है, उसके मनमें भगवान्‌का प्रत्यक्ष होता है। जिसकी वाणीमें सत्य है, उसकी वाणी दैवी वाणीके समान सत्य होती है। जिसके व्यवहारमें सत्य है, उसका व्यवहार सबको सत्यकी ओर ले जानेवाला होता है।

× × × ×

सत्यका ध्यान करनेसे, सत्यका संकल्प करनेसे, सत्यका मनन करनेसे, सत्यकी खोज करनेसे, सत्यका प्रयोग करनेसे, सत्य वचन बोलनेसे और सत्यका महत्त्व बार-बार विचारनेसे सत्यमें श्रद्धा होती है। और जिसकी सत्यमें श्रद्धा होती है, वही पुरुष सत्यका सेवन कर सकता है।

× × × ×

सत्यका सेवक मृत्युसे भी नहीं डरता, वह सदा दृढ़तापूर्वक सत्यको पकड़े रहता है। सत्यवादी होनेके कारण ही आजतक हरिश्चन्द्र और युधिष्ठिरका लोग गुणगान करते हैं। याद रखना चाहिये जो सत्यकी सेवा करता है, सत्य उसकी सदा रक्षा करता है।

यह सम्भव है कि झूठोंके गिरोहमें सत्यवादीका एक बार अनादर हो, उसे लोग बुरा कहें, मूर्ख बतावें; परन्तु सत्यके सेवकको इससे डरना नहीं चाहिये। यह तो उसके सत्यसेवनकी प्राथमिक परीक्षा है। सत्यवादीकी तो अग्निपरीक्षा हुआ करती है और जो उन परीक्षाओंमें सत्यकी रक्षा कर पाता है, वही सत्यका सच्चा सेवक है।

× × × ×

दीन, दुःखी, रोगी, असहाय, विपत्तिग्रस्त, अभावमें पड़े हुए और असमर्थ प्राणियोंपर दया करो। निरन्तर इस दयाकी वृत्तिको बढ़ाते रहो। यह विचार करो कि यदि हम इस अवस्थामें होते तो किस प्रकार

सहायताकी बाट देखते, ऐसे ही ये भी देखते होंगे। जैसे अपना संकट टालनेके लिये पहलेसे ही सचेष्ट रहते हो, वैसे ही दूसरोंके दुःखोंको टालनेकी चेष्टा करो।

जो मनुष्य दीन-दुःखियोंके साथ सच्ची सहानुभूति रखता है और उनको विपत्तिसे बचानेकी चेष्टा करता है, विपत्तिकालमें उसको भी दूसरे प्राणियोंसे सहज ही सहानुभूति और सहायता मिलती है।

दया और सेवाका भाव अत्यन्त दृढ़ हो जानेपर तथा इच्छाशक्तिमें दया और सेवाका पूरा योग हो जानेपर यहाँतक हो सकता है कि तुम जिसपर दया करना चाहोगे तथा जिसकी सेवा करना चाहोगे, उसपर भगवान्‌की दया होगी और उसकी आवश्यक सेवा किसी-न-किसी साधनसे अपने-आप हो जायगी। तुम्हारी इच्छामात्र उसका दुःख नाश करनेके लिये काफी होगी।

फिर तुम्हारे संकल्पसे ही जगत्‌के प्राणियोंका दुःख दूर हो सकेगा। तुम अपने स्थानपर बैठे जिस प्राणीके लिये एक बार मनमें ऐसा भाव कर लोगे कि उसकी विपत्ति टल जाय, तुम्हारी सच्ची इच्छाशक्तिके प्रभावसे भगवान् उसकी विपत्तिको टाल देंगे। जब तुम्हारे संकल्पमात्रसे दूसरोंके दुःख टल जायँगे; तब तुम दुःखरहित हो जाओगे—इसमें तो कहना ही क्या है।

दीन-दुःखियोंकी सेवा करनेवाले तो बहुत लोग हैं, परन्तु उनमें ऐसी शक्ति नहीं है। इसका कारण प्रधान यही है कि उनमेंसे अधिकांश लोग ऐसे हैं जो दीन-दुःखियोंके विपत्तिनाशका ही शुद्ध मनोरथ नहीं करते। उनके मनमें दीन-दुःखियोंके दुःखनाशकी आड़में किसी अपने व्यक्तिगत लाभकी वासना छिपी रहती है। और नहीं तो मान-बड़ाईकी कामना तो प्रायः रहती ही है। इसीसे उनका संकल्प शुद्ध नहीं होता—और इसीसे उनकी इच्छाशक्तिमें दया और सेवाका पूर्ण प्रादुर्भाव नहीं होता।

साधन-पथके विघ्न

जहाँतक बने कम बोलो, बिना बोले काम न चलता हो वहीं बोलो। किसीको सलाह देने मत दौड़ो, दो आदमी बात करते हों तो उसे सुननेकी चेष्टा न करो, न उनके बीचमें बोलो। वाणीका अपव्यय न करो। जो बोलो सो सत्य, सरल, हितकर, मधुर और परिमित बोलो। वाणीसे किसीको भुलानेकी, धोखा देनेकी, किसीका अहित करनेकी या जी दुखानेकी चेष्टा मत करो। किसीकी निन्दा या चुगली न करो। कम-से-कम बोलनेके बाद जितना समय बचे, सब-का-सब श्रीभगवान्‌के नामजपमें, भगवान्‌के गुणगानमें लगा दो।

× × × ×

जहाँतक बने मनको श्रीभगवान्‌के चिन्तनमें लगाये रखनेकी चेष्टा करो। भगवान्‌ने कहा है मुझमें मन लगा लो, फिर मेरी कृपासे सारे विघ्न अपने-आप ही नाश हो जायँगे। मनमें न किसीकी बुराई चाहो, न किसीसे घृणा करो, न अभिमानको स्थान दो, न शोक या विषादको ही आने दो। किसी भी दूसरेकी चीजपर मनको न चलने दो। वैराग्यकी भावना करो। सदा भगवान्‌की कृपापर भरोसा रखते हुए भगवान्‌का स्मरण करो, सबका भला चाहो, दया, प्रेम और सहानुभूति बढ़ाओ। किसीके दोष मत देखो—सब जगह परमात्माको देखनेकी चेष्टा करो।

× × × ×

शरीरसे सबकी यथायोग्य सेवा करो, किसी प्राणीकी हिंसा न करो, किसीकी चीज न चुराओ, जहाँतक बने स्त्रीसंगका त्याग करो। परस्त्रीका तो सर्वथा त्याग कर दो। इन्द्रियोंका संयम करो और सबमें भगवान् समझकर शरीरसे सबको सुख पहुँचानेकी चेष्टा करो।

× × × ×

सब विषयोंमें अपनेको जानकार मत समझो, जिस विषयका तुम्हें ज्ञान नहीं है, उसके सम्बन्धमें कोई राय न दो। जाननेकी आवश्यकता

हो तो संकोच और अभिमान छोड़कर उस विषयके जानकारसे पूछ लो। बिना साधनके किसी भी वस्तुका भीतरी ज्ञान नहीं होता, परमार्थतत्त्वकी बात ही अलग है। इसलिये केवल किताबोंके पन्ने उलटकर ही अपनेको ज्ञानी या भक्त मत मान बैठो, ज्ञान और भक्तिके लिये श्रद्धापूर्वक साधना करो।

× × × ×

जहाँतक बने विषयभोगमें संयम करो, मनमें सन्तोष रखो, जीवनमें सादगी और पवित्रता लाओ, चित्तको शान्त रखना सीखो। आहार-विहारको नियमित करो।

× × × ×

घृणा, द्वेष और वैर तथा दम्भ, परदोष-दर्शन और डाह साधनराज्यके बड़े शत्रु हैं। इनसे सदा बचे रहनेकी चेष्टा करो। उपदेशक, वक्ता, सुधारक, गुरु, पथप्रदर्शक बननेकी कामना मत करो। जीवनको सत्य, प्रेम, दया, ज्ञान और भक्तिमें साननेकी चेष्टा करो, श्रद्धा, स्वार्थ-त्याग और वैराग्यके भावको बढ़ाते रहो। ये जितने ही बढ़ेंगे, तुम्हारे जीवनमें सत्य और प्रेम आदि गुणोंका उतना ही अधिक विकास होगा।

× × × ×

शौकीनी, व्यसन, आलस्य, प्रमाद, संशय, दुराग्रह, विवाद, कुतर्क, जानकारीका अभिमान, बहुत बातें करना, बहुत लोगोंसे मिलना-जुलना और मान-बड़ाईकी इच्छा—ये साधनपथमें बड़े भारी विघ्न हैं। इनसे सदा बड़ी सावधानीसे अपनेको बचाते रहना चाहिये।

तुम क्यों चिन्ता करते हो?

तुम क्यों चिन्ता करते हो? चिन्ता करनेवाले तो वे हैं जिन्होंने माताके गर्भमें तुम्हारी रक्षा की थी और जन्म होनेपर तुम्हारे पीनेके

लिये पहलेसे ही माताके स्तनोंमें दूध पैदा कर दिया था। तुम तो बस, एक मनसे उन्हींका चिन्तन करो।

× × × ×

चित्तसे उनका चिन्तन करो, इन्द्रियोंसे उनकी सेवा करो, जीवनका प्रत्येक कार्य उन्हींकी सेवाके लिये ही करो। परन्तु याद रखो—उनकी सेवाके लिये जो कार्य होते हैं, वे सत्कार ही होते हैं। बुरे कर्मोंसे उनकी सेवा नहीं हो सकती। भगवान्‌की सेवाके लिये किये जानेवाले शुभ कर्मोंका नाम ही सदाचार है।

× × × ×

यह सदाचार ही मनुष्यका यथार्थ जीवन है। सदाचाररहित मनुष्य तो जीता हुआ ही मुर्देके समान है। बाहर कितनी ही सुन्दरता क्यों न हो, देहको कैसे भी क्यों न सजाया जाय; यदि सदाचार नहीं है तो कुछ भी नहीं है। वरं सदाचारशून्य मनुष्यके देहकी सजावट तो ऐसे ही है, जैसे जहरसे भरे हुए सोनेके कलशकी!

× × × ×

निरन्तर अपने अन्दर सद्‌गुणोंको भरनेकी चेष्टा करते रहो और सत्कर्मके लिये ही प्रयत्न करो। ये सद्‌गुण और सत्कर्म भी केवल भगवत्-पूजनके लिये ही होने चाहिये। इनके बदलेमें मिलनेवाली लौकिक पूजा-मान-बड़ाईको यदि इनका फल समझ बैठोगे तो याद रखो, गिरते देर नहीं लगेगी। सद्‌गुण और सत्-कर्म सारे शीघ्र ही नष्ट हो जायँगे। दैवी सम्पदाके गुण भगवान्‌के आश्रयपर ही ठहरते हैं, मान-सम्मान या पूजा-प्रतिष्ठाके आधारपर कदापि नहीं।

× × × ×

जिसके जीवनका लक्ष्य भगवान् होते हैं और जो इस लक्ष्यको दृढ़ताके साथ बनाये रखता है। जगत्‌की विपत्तियाँ उसके मार्गमें रोड़े नहीं अटका सकतीं। भगवत्कृपासे उसका पथ निष्कण्टक हो जाता है।

× × × ×

कहीं काँटे रहते भी हैं तो भी उसका पैर उनपर टिकते ही वे मखमलके तारोंकी तरह कोमल हो जाते हैं। कोई भी विघ्न उसके सामने आकर विघ्नरूप नहीं रहते; वरन् उलटे उसके सहायक बन जाते हैं।

× × × ×

जीवनका लक्ष्य निश्चय करते समय भगवत्प्राप्त महापुरुषों और भक्तोंके जीवनचरित्रोंका अध्ययन करो, उससे तुम्हें अपने लक्ष्य स्थिर करनेमें सहायता मिलेगी और लक्ष्यकी ओर चलनेमें बल, अवलम्बन और पाथेय मिलेगा।

× × × ×

याद रखो—बातोंसे रास्ता नहीं कटता; बहुत ऊँची-ऊँची बातें तो नाटकके पात्र भी किया करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण, भीष्मपितामह, शंकराचार्य और शुकदेव आदिका अभिनय करनेवाले कहनेमें कौन-सी कमी रखते हैं; परन्तु उससे होता क्या है। जबतक जीवन पवित्र नहीं होता—जीवनमें वे बातें नहीं उतरतीं तबतक वह नाटकमात्र है। इस नाट्यसे यदि कहीं बड़ाई मिल जाय तो उससे अपनी स्थितिको न भूल जाओ। जगत्‌के लोग तुम्हारी बातोंसे मुग्ध होकर धोखा खा सकते हैं; परन्तु अन्दरकी जाननेवाले भगवान्‌को तुम नहीं छल सकते। भगवान् तो तुम्हारे सच्चे और ऊँचे जीवनपर ही रीझेंगे—बातोंपर नहीं!

× × × ×

जीवनमें कुछ पवित्रता और सचाई आ भी जाय, परन्तु जबतक अपवित्रताका एक भी कण या जरा-सी भी बुराई हृदयमें दिखायी दे तबतक सन्तोष न करो। बुराई और अपवित्रता रहते अपनेको धर्मात्मा, महात्मा या भक्त तो कभी मानो ही मत। दूसरे ऐसा कहें तो हो सके तो उन्हें अपनी सच्ची हालत समझा दो, नहीं तो उनकी उपेक्षा करो। ऐसा न करोगे और अपनेको बड़ा मान बैठोगे तो याद रखो, बहुत बुरी दशा होगी।

× × × ×

निरन्तर आगे बढ़ते रहो, रुको मत, पर अपनी स्थितिपर अभिमान न करो। जबतक अभिमान, ममता या आसक्तिका जरा भी बीज देख पाओ, तबतक साधनामें विश्रामको जरा भी स्थान मत दो।

× × × ×

दूसरोंकी निन्दा कभी न करो, न दूसरोंको बुरा समझो। तुम्हें फुरसत नहीं मिलनी चाहिये अपनी व्यवस्था और अवस्थाकी देखभालसे। दूसरोंकी ओर देखे बिना न रहा जाय तो केवल उनके गुणोंको, उनके सत्कर्मोंको और उनके शीलको ही देखो!

आत्माकी अनन्त शक्ति

याद रखो, आत्मामें अनन्त शक्ति है, मोहकी गहरी चादरसे वह ढक रही है। इसीसे तुम अपनेको मन और इन्द्रियोंके वशमें पाते हो, इसीसे तुम्हारे अन्दर वासना, कामना और विषयासक्तिने अपने डेरे डाल रखे हैं, इससे तुम पाप-तापके आक्रमणसे पीड़ित हो। यदि तुम किसी तरह उस चादरको फाड़ सको तो फिर तुम्हारी अनन्त शक्तिके सामने किसीकी भी शक्ति नहीं जो ठहर सके और तुम्हें किसी प्रकार भी सता सके।

× × × ×

मोहकी चादर फाड़नेका प्रधान साधन है आत्मशक्तिमें विश्वास, आत्मबलका निश्चय। विश्वासकी ज्योतिसे मोह-तमका नाश तत्काल ही हो सकता है। तुम विश्वास करो, निश्चय करो कि तुम्हारे अन्दर अनन्त शक्ति है। मन, इन्द्रियाँ सब तुम्हारे सेवक हैं, तुम्हारी अनुमतिके बिना उनमें जरा भी हिलने-डुलनेका सामर्थ्य नहीं है। तुम्हारी ही दी हुई जीवनी-शक्तिसे वे जीवित हैं और तुम्हारे ही बलपर वे सारी चेष्टाएँ करते हैं। तुमने भूलसे अपनेको उनका गुलाम मान लिया, तुम अपने स्वरूपको भूल गये, इसीसे तुम्हारी

यह दुर्दशा है। आत्माके स्वरूपको सँभालो, फिर तुम अपनेको अपार शक्तिसम्पन्न पाओगे।

× × × ×

मोहकी चादरके अन्दर छिपी हुई आत्मशक्ति तो काम करती ही रहती है, परन्तु मोहावृत होनेसे उसके वे काम भी मोह बढ़ानेवाले ही होते हैं, इससे शक्तिका दुरुपयोग और व्यर्थ व्यय होता है। तुम निश्चयकी—विश्वासकी कटार हाथमें लेकर चादरको चीर डालो। देखो, तुम्हारे अन्दर तुम्हें परम शान्ति प्रदान करनेवाली ज्ञानाग्नि निरन्तर जल रही है। वह राखसे ढकी है। अश्रद्धा और आत्मविस्मृति ही वह राखका भारी ढेर है। इस भस्मराशिको हटाकर दहका दो आगको, उस प्रचण्ड आगमें मोहकी चादरका एक-एक धागा जल जायगा। फिर तुम आत्माकी अनन्त शक्तिकी झाँकी कर सकोगे।

× × × ×

याद रखो—निश्चय, श्रद्धा, विश्वास और आत्मस्वरूपकी स्मृति ही तुम्हारी आत्माकी अनन्त शक्तिको प्रकट करनेवाले चार महाद्वार हैं। इनकी शरण ग्रहण करो—इनका आश्रय लो।

घबराओ मत

दुःखोंसे घबराओ मत। दुःख तुम्हारी भलाईके लिये ही तुम्हारे पास आते हैं। प्रत्येक दुःखको अपने पहले किये हुए किसी कर्मका ही फल समझो। याद रखो—दुःखकी प्राप्तिसे तुम्हारे कर्मका भोग पूरा हो जाता है और तुम कर्म-फलके बन्धनसे मुक्त होकर निर्मल हो जाते हो। भीष्मपितामहने तो देहत्यागके पूर्व कर्मोंको पुकारकर कहा था कि 'यदि मेरे कोई कर्म शेष हों तो वे आकर मुझे अपना फल भुगता दें।' अतएव कोई भी दुःख प्राप्त हो तो उनको

शान्तिपूर्वक भोगो और मनमें जप जानकर सुखी होओ कि कर्मफलका भोग हो गया यह बहुत उत्तम हुआ।

× × × ×

तुम्हारे प्रत्येक सुख-दुःखका विधान भगवान् किया करते हैं, भगवान् परम दयालु हैं, उनका कोई विधान ऐसा नहीं होता जिसमें तुम्हारा कल्याण न भरा हो। इसलिये प्रत्येक दुःखकी प्राप्तिमें उनका विधान समझकर आनन्द प्राप्त करो। निश्चय समझो, इस दुःखको तुम्हारे मंगलके लिये ही भगवान्ने तुम्हारे पास भेजा है।

निश्चय समझो—अभावके अनुभव या प्रतिकूल अनुभवका नाम ही दुःख है। अभावका अथवा प्रतिकूलताका बोध राग-द्वेषके कारण तुम्हारी अपनी भावनाके अनुसार होता है। राग-द्वेष न हो तो सब अवस्थाओंमें आनन्द रह सकता है। संसारमें जो कुछ होता है, सब भगवान्की लीला होती है, उनका खेल है, यह समझकर कहीं राग और ममता तथा द्वेष और विरोध न रखकर प्रतिकूलता या अभावका बोध त्याग दो, फिर कोई भी दुःख तुमपर असर नहीं डाल सकेगा।

× × × ×

मनके अनुकूल विषयोंकी अप्राप्ति अथवा नाशका नाम ही दुःख है। विषयोंकी प्राप्तिसे मन विषयोंमें अधिक फँसता है। इसीलिये मुमुक्षु साधक जान-बूझकर धन, मान, सम्पदा, यश आदि सुखरूप विषयोंका त्याग किया करते हैं। यदि तुम्हारे पास ये विषय न रहें या होकर नाश हो जायँ तो यही समझो तुम एक बहुत घने दुःखजालसे छूट गये हो। इस अवस्थामें किसी प्रकारसे भी व्यथित मत होओ।

× × × ×

सांसारिक सुख-दुःख नाम और रूपको लेकर होते हैं। तुम आत्मस्वरूप हो। तुम न शरीर हो न नाम हो। तुम तो सदा ही सब

सुख-दुःखोंके द्रष्टा हो। तुमने लड़कपनको देखा, जवानी देखी, बुढ़ापा देखते हो। अवस्थाएँ बदल गयीं; परन्तु तुम देखनेवाले वह-के-वह हो। इसीसे तुम्हें वे देखी हुई बातें याद आती हैं। निश्चय करो, तुम भोक्ता नहीं हो, तुम तो द्रष्टामात्र हो। सुख-दुःखोंसे सर्वथा परे हो, निर्लेप हो। तुम्हारे आत्मस्वरूपमें आनन्द-ही-आनन्द है। वह न कभी धनहीन होता है, न अपमानित होता है, न निन्दित होता है, न बीमार होता है और न मरता है। वह सब अवस्थाओंमें सम रहता है। फिर तुम नामरूपसे सम्बन्धित घटनाओंको दुःखका नाम देकर व्यथित क्यों होते हो? इस मूर्खताको छोड़कर हर हालतमें आनन्दका अनुभव करो। तुमपर कभी दुःख आ ही नहीं सकता। तुम दुःखको ग्रहण करते हो, इसीसे दुःख आता है। ग्रहण करना छोड़ दो; फिर कोई भी दुःख तुम्हारे पासतक नहीं फटकेगा।

× × × ×

अपना तन-मन-धन सब भगवान्‌के अर्पण कर दो; तुम्हारा है भी नहीं, भगवान्‌का ही है। अपना मान बैठे हो—ममता करते हो इसीसे दुःखी होते हो। ममताको सब जगहसे हटाकर केवल भगवान्‌के चरणोंमें जोड़ दो, अपने माने हुए सब कुछको भगवान्‌के अर्पण कर दो। फिर वे अपनी चीजको चाहे जैसे काममें लावें; बनावें या बिगाड़ें। तुम्हें उसमें व्यथा क्यों होने लगी? भगवान्‌को समर्पण करके तुम तो निश्चिन्त और आनन्दमग्न हो जाओ।

× × × ×

याद रखो—विधान और विधातामें कोई भेद नहीं है। खेल भी वही और खिलाड़ी भी वही। इस परम रहस्यको समझकर हर हालतमें; प्रत्येक अवस्थामें विधानके रूपमें आये हुए विधाताको पहचानकर उन्हें पकड़ लो! फिर आनन्द-ही-आनन्द है।

भगवान्‌को पुकारो

निराश न हो, निश्चय रखो—भगवान्‌का वरद हाथ सदा ही तुम्हारे ऊपर छाया किये हुए है। भजन करो, उस छत्रछायाको प्रत्यक्ष देख सकोगे और फिर तो अपनेको इतने महान्‌की शक्तिसे सदा सुरक्षित पाकर आनन्दमें नाच उठोगे।

देखो, देखो, वे मुसकराते हुए तुम्हें पुकार रहे हैं, तुम्हारे बहुत समीप आ गये हैं, अत्यन्त ही निकट हैं; बस, चाहते ही तुम उन्हें स्पर्श कर सकते हो; पकड़ लो उन्हें! अभागे! क्यों देर करते हो? विश्वास नहीं है, इसीसे वंचित हो रहे हो!

× × × ×

समझते हो, ये भावुकताकी बातें हैं, कल्पनाकी सृष्टि है, शब्द-जालमात्र है। हाय! इसीसे ठगे जा रहे हो। एक बार पूरा विश्वास करके देखो तो सही!

बच्चा दु:खी होकर रोता है, माँको पुकारता है, बच्चेकी दर्दभरी और आवेगभरी पुकार सुनते ही माँ आती है। माँ शायद दूर हो तो न सुन सके, परन्तु यह तुम्हारी सच्चिदानन्दमयी माँ तो निरन्तर तुम्हारे साथ ही रहती है। जब पुकारोगे, तभी उत्तर पाओगे। पुकारना सीखो! पुकारो-पुकारो।

× × × ×

पूछते हो, कैसे पुकारें? वैसे ही पुकारो, जैसे अनन्य-आश्रित मातृपरायण बच्चा पूरे विश्वाससे माँको पुकारता है। पुकारना तो तुम जानते हो, परन्तु विश्वास नहीं करते, इसीसे नहीं पुकार पाते।

× × × ×

विश्वास करो—सरलता, कोमलता तथा भरोसेसे हृदयको भर लो। फिर पुकारो। तुम्हारी पुकार व्यर्थ नहीं जायगी।

× × × ×

द्रौपदीने पुकारा था, गजराजने पुकारा था। आज भी लोग पुकारते होंगे और उसी भाँति उत्तर भी पाते होंगे। तुम भी वैसे ही पुकारो—उत्तर पाओगे!

परन्तु यह मत आशा रखो—इस धारणाको ही छोड़ दो कि सब जाननेवाले तुम्हारे सुहृद् भगवान् तुम्हारे मनकी करके तुम्हें अधोगतिमें जाने देंगे।

× × × ×

बच्चा आगकी तरफ दौड़ता है, रास्तेमें कोई बाधा पाकर रोता है। करुणस्वरमें माँको पुकारता है, माँ दौड़ी आती है परन्तु आकर बच्चेको आगके अन्दर थोड़े ही जाने देती है। वह आगसे उसको और भी दूर हटा लेती है, वह यदि नहीं भूलता तो अज्ञानवश और भी रोता है। विशेष दुःखका अनुभव करता है। माँ उसके इस रोनेकी परवा तो नहीं करती, परन्तु माँको उसका किसी बातके लिये भी रोकर दुःखी होना सहन भी नहीं होता। वह पुचकारती है, उसे शान्त करना चाहती है और अपने आँचलमें छिपाकर—आवरण अलग करके अमृत-तुल्य स्तन्य पिलाने लगती है।

× × × ×

बस—भगवान्को पुकारो, वे भी आयेंगे, तुम्हें गोदमें उठा लेंगे और अपने हृदयकी अप्रतिम सुधा-धारासे तुम्हें तृप्त कर देंगे। वह सुधा-धारा ऐसी मधुर होगी कि तुम तृप्त होकर भी अतृप्त ही रहोगे। भगवत्प्रेमसे प्राप्त हुई इस नित्य तृप्तिमें निरन्तर अतृप्तिका बोध ही भक्ति है। यही भक्तका महान् मनोरथ है, जिसके सामने वह कैवल्य मोक्षतकको तुच्छ समझता है।

उपदेश करो अपने लिये

सुननेवाले लाखों हैं, सुनानेवाले हजारों हैं, समझनेवाले सैकड़ों हैं, परन्तु करनेवाले कोई बिरले ही हैं। सच्चे पुरुष वही हैं और सच्चा लाभ भी उन्हींको प्राप्त होता है, जो करते हैं।

× × × ×

उपदेश करो अपने लिये, तभी तुम्हारा उपदेश सार्थक होगा। जो कुछ दूसरोंसे करवाना चाहते हो, उसे पहले स्वयं करो। नहीं तो तुम्हारा उपदेश नाटकके अभिनयके सिवा और कुछ भी नहीं है।

× × × ×

नाटकमें हरिश्चन्द्र, प्रह्लाद, शंकराचार्य और चैतन्य महाप्रभुके पार्ट बहुत किये जाते हैं, परन्तु इनसे उन पार्ट करनेवालोंको सिवा नौकरीके और क्या मिलता है? वैसे ही कोरे अभिनयसे तुम्हारा आत्मिक लाभ कुछ भी नहीं है। अभिनय छोड़कर आचरण करो।

× × × ×

संसारमें भली-बुरी दोनों ही चीजें हैं। जो जिसका ग्राहक है, उसे वही मिलती है। तुम बुरीको छोड़कर भलीके ग्राहक बनो। फिर देखो, तुम्हें भली-ही-भली मिलेगी। हाट उसी मालकी लगा करती है, जिसके खरीदार होते हैं।

इस सूत्रको याद रखो—भगवान्का चिन्तन ही परम लाभ है और भगवान्की विस्मृति ही परम हानि है। और इसके अनुसार भगवान्का चिन्तन करते हुए ही जगत्के सब काम करनेकी चेष्टा करो।

× × × ×

भगवान्पर जो तुम्हारा विश्वास है, उसे कभी डिगने न दो; जहाँतक बढ़ सके, बढ़ाओ। भगवान्में विश्वास एक महान् बल है। भगवान्में विश्वास रखनेवाला पुरुष ही भीतरी शत्रुओंपर विजय प्राप्त करके निर्भय हो सकता है।

× × × ×

किसीसे डरो मत! डरो बुरे आचरणोंसे, अपने हृदयकी गन्दगीसे और भगवान्‌के प्रति होनेवाले अविश्वाससे। जिसके मनसे भगवान्‌का विश्वास उठ गया, यह निश्चय समझो कि उसकी आध्यात्मिक मृत्यु ही हो गयी।

× × × ×

किसीके द्वारा अपनी कोई महत्त्वपूर्ण सेवा बन पड़े तो बदला चुकाने जाकर उसका तिरस्कार न करो। सच्ची सेवाका बदला तुम चुका ही नहीं सकते। तुम तो बस कृतज्ञताभरे हृदयसे, जहाँतक अपनेसे बने, सब तरहसे उसकी सेवा ही करते रहो और सच्चे दिलसे ऐसी चेष्टा करो, जिससे उसको न तो तुमसे सेवा करानेमें संकोच हो और न अपनी सेवाका वह बदला ही समझे।

× × × ×

सेवा करके भूल जाओ, कराके याद रखो; दुःख पाकर भूल जाओ, देकर याद रखो; भला करके भूल जाओ, कराके याद रखो; बुरा कराके भूल जाओ, करके याद रखो!

× × × ×

दूसरेके दोषोंका न प्रचार करो, न चर्चा करो और न उन्हें याद ही करो। तुम्हारा इसीमें परम लाभ है। भगवान् सर्वान्तर्यामी हैं, वे किसने किस परिस्थितिमें, किस नीयतसे कब क्या किया है, सब जानते हैं और वे ही उसके फलका भी विधान करते हैं। तुम बीचमें पड़कर अपनी बुद्धिका दीवाला क्यों निकालने जाते हो और झूठी-सच्ची कल्पना करके क्यों दोषोंको ही बटोरते हो?

अपनेको भगवान्‌पर छोड़ दो

पद्धतियोंके फेरमें न पड़कर अपनेको भगवान्‌पर छोड़ दो; रास्तोंकी छानबीन न करो और न किसी रास्तेकी खाक ही छानो; अगर तुम अपनेको सर्वथा निराधार मानकर उनपर छोड़ सके तो वे सर्वाधार ही तुम्हारे परमाधार बन जायँगे। तुम्हारा हाथ पकड़कर, दिव्य प्रकाशकी ज्योति दिखलाकर—अधिक क्या, गोदमें उठाकर खिलाते-पिलाते और आनन्द देते ले चलेंगे।

पर जब तुम उनकी गोदमें आ गये, तब तुम्हें चलनेकी और कहीं पहुँचनेकी चिन्ता कैसी; तुम तो निहाल हो चुके उनकी गोदको पाकर। भगवान्‌की शरणागति यही है। जो भगवान्‌के शरण होकर उसका कोई दूसरा फल चाहता या समझता है, वह सब कुछ छोड़कर भगवान्‌के आश्रयमें आया ही नहीं।

सिद्धान्तको लेकर मत लड़ो

अभिमानवश यह मत कहो कि भगवान् ऐसे ही हैं और शास्त्रका तत्त्व यही है। याद रखो—भगवान्‌का यथार्थ ज्ञान पुस्तकें पढ़नेसे, तर्कयुक्तियोंकी प्रबलतासे या केवल दर्शनोंकी मीमांसासे नहीं हो सकता। इनसे बुद्धिकी प्रखरता तो बढ़ती है; परन्तु आगे चलकर वही बुद्धि ऐसे तर्कजालमें फँसा देती है कि फिर बाध्य होकर अभिमान और राग-द्वेषादिका प्रभाव स्वीकार करना पड़ता है और जीवन ही जंजाल बन जाता है।

× × × ×

भगवान् सारी गीता कह जानेके बाद अठारहवें अध्यायके अन्तिम भागमें अपने यथार्थ ज्ञानकी प्राप्तिके उपाय बतलाते हैं। गीता तो सुना ही दी थी, फिर आवश्यकता क्या थी उपाय बतलानेकी? उपाय

बतलानेका यही तात्पर्य है कि केवल पढ़नेसे काम नहीं होता, पढ़-सुनकर वैसा करना पड़ेगा, तब भगवान्‌की 'परा भक्ति' मिलेगी और परा भक्ति मिलनेपर भगवत्कृपासे भगवान्‌का यथार्थ ज्ञान होगा।

वे उपाय ये हैं—

सारी पाप-तापकी, छल-छिद्रकी, दम्भ-दर्पकी और ऐसे ही अन्यान्य दोषोंकी भावनाको मिटाकर बुद्धिको परम शुद्ध करो; एकान्तमें रहकर वृत्तियोंको संयत करो; परिमित और शुद्ध आहार करके शरीरका शोधन करो; मन, वाणी और शरीरपर अपना अधिकार स्थापन करो; दृढ़ वैराग्य धारण करो; नित्य भगवान्‌का ध्यान करो; विशुद्ध धारणासे अन्तःकरणका नियमन करो; शब्दादि सब विषयोंका त्याग करो; राग-द्वेषकी जड़ काटो; अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध और परिग्रहका त्याग करो। सब जगहसे ममताको हटा लो और ऐसा करके चित्तको सर्वथा शान्त कर लो, तब ब्रह्मकी प्राप्तिके योग्य होओगे। इसके बाद ब्रह्मभूत-अवस्था, अखण्ड प्रसन्नता, शोक और आकांक्षासे रहित सम-स्थिति और सब भूतोंमें सम एकात्मभावके प्राप्त होनेपर, तब भगवान्‌की 'परा भक्ति' प्राप्त होगी। उस परा भक्तिसे भगवान्‌के तत्त्वका—अर्थात् भगवान् कैसे हैं, क्या हैं—यह ज्ञान होगा और तदनन्तर, ऐसा यथार्थ ज्ञान होते ही तुम भगवान्‌में प्रवेश कर जाओगे।

× × × ×

सोचो, जिनको भगवान्‌का ऐसा ज्ञान हो गया, वे तो भगवान्‌में प्रवेश कर गये। जिनको ज्ञान नहीं हुआ, वे भगवान्‌को जानते नहीं। ऐसी अवस्थामें यह कहना कि 'मैं भगवान्‌का तत्त्व जानता हूँ'—अहम्मन्यता ही तो है।

× × × ×

लड़ना छोड़ो—यह मत कहो कि 'भगवान् निर्गुण ही हैं, निराकार ही हैं, सगुण ही हैं, साकार ही हैं।' वे सब कुछ हैं; उनकी वे ही जानें।

तुम पहले यह सोचो कि ऊपर बतलाये हुए उपायोंमेंसे तुमने कौन-कौन-सा उपाय पूरा साध लिया है। जब रास्ते ही नहीं चले, तब लक्ष्य-स्थानका रूप-रंग बतलाना कैसा? राह चलो, साधन करो। चलकर वहाँ पहुँच जाओ, फिर आप ही जान जाओगे, वहाँका रूप-रंग कैसा है।

× × × ×

चलना तो शुरू ही नहीं किया और लड़ने लगे नक्शा देखकर! इससे बताओ क्या लाभ होगा? नक्शेमें ही रह जाओगे, असली स्वरूप तो सामने आवेगा नहीं। इसलिये विचार करो और अकड़ छोड़कर साधन करो; याद रखो—साधनकी पूर्णता होनेपर ही साध्यका स्वरूप सामने आता है।

भगवान्‌को जाननेके जो उपाय ऊपर बतलाये गये हैं, वे न हो सकें तो श्रद्धाके साथ भगवान्‌के शरणागत हो जाओ। कहोगे 'हम तो भगवान्‌को जानते ही नहीं फिर किस भगवान्‌की शरण हो जायँ। इसीलिये तो भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा—'तुम एकमात्र मेरी शरणमें आ जाओ।' बस, भगवान्‌की इस बातको मानकर अर्जुनको उपदेश देनेवाले सौन्दर्य-माधुर्यके अनन्त समुद्र, परम प्रिय, परम गुरु, परम ईश्वर पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णकी शरण हो जाओ। उनके इन शब्दोंको स्मरण रखो—'मुझमें मन लगाओ, मेरे भक्त बन जाओ, मेरी पूजा करो, मुझे नमस्कार करो, मैं शपथ करके कहता हूँ तुम मुझको ही प्राप्त होओगे—याद रखो—तुम मुझे बड़े प्यारे हो!'

× × × ×

और क्या चाहिये? बस, यदुकुलभूषण नन्दनन्दन आनन्दकन्द भगवान् मुकुन्दकी शरण हो जाओ, उनके कृपा-कटाक्षमात्रसे अपने-आप ही तुम सारे साधनोंसे सम्पन्न हो जाओगे; तुम्हें 'परा भक्ति' प्राप्त हो जायगी और तब तुम उन्हें यथार्थरूपमें जान सकोगे।

× × × ×

गीतामें उन्होंने जो दिव्य वचन कहे हैं, उनके अनुसार अपनेको योग्य बनानेकी चेष्टा करते रहो, दैवीसम्पत्ति और भक्तोंके गुणोंका अर्जन करो। करो उन्हींकी कृपाके भरोसे और मन, वाणी, शरीरसे बारम्बार अपनेको एकमात्र उन्हींके चरणोंमें अर्पण करते रहो। जिस क्षण तुम्हारे समर्पणका भाव यथार्थ समर्पणके स्वरूपमें परिणत हो जायगा, उसी क्षण वे तुम्हें अपनी शरणमें ले लेंगे—बस, उसी क्षण तुम निहाल हो जाओगे।

× × × ×

इसीलिये तर्कजालमें मत पड़ो, सिद्धान्तको लेकर मत लड़ो, साध्यतत्त्वकी मीमांसा करनेमें जीवन न लगाओ। जिनको पाण्डित्यका अभिमान है, उन्हें लड़ने दो, तुम बीचमें मत पड़ो। तुम तो बस, श्रीकृष्णको ही साध्यतत्त्व मानकर उनका आश्रय ले लो। गीतामें भगवान्‌ने इसीको सर्वोत्तम उपाय बतलाया है। गीता पढ़कर तुमने यदि ऐसा कर लिया तो निश्चय समझो—गीताका परम और चरम तत्त्व तुम अवश्य ही जान जाओगे। नहीं तो झगड़ते रहो और नाक रगड़ते रहो, न तत्त्व ही प्रकाशित होगा और न दुःखोंसे ही छूटोगे।

सच्ची सफलता

याद रखो—मनुष्य-जीवनकी सच्ची सफलता भगवान्‌के प्रेमको प्राप्त करनेमें ही है। भगवत्-प्रेमकी प्राप्ति किसी भी साधनसे नहीं होती। यह तभी मिलता है जब भगवान् स्वयं कृपा करके देते हैं।

× × × ×

भगवान्‌की कृपा सभीपर है, परन्तु उस कृपाके तबतक दर्शन नहीं होते जबतक मनुष्य उसपर विश्वास नहीं करता और भगवत्कृपाके सामने लौकिक-पारलौकिक सारे भोगों और साधनोंको तुच्छ नहीं

समझ लेता। परन्तु ऐसे विश्वासकी प्राप्ति और सबको तुच्छ समझनेकी स्थिति भी भगवत्कृपासे ही प्राप्त हो सकती है।

इसलिये भगवत्कृपाकी—एकमात्र भगवत्कृपाकी ही बाट देखते हुए भगवान्‌का भजन करो। मनके दोष, मनकी चंचलता, विषयोंमें आसक्ति आदि न मिटें तो निराश मत होओ, भजनके बलसे सब दोष अपने-आप दूर हो जायँगे।

× × × ×

जो मनुष्य भजन न करके दोषरहित होनेकी चेष्टा करता है, और दोषोंके रहते अपनेको भगवत्कृपाका अधिकारी मानता है, वह तार्किकोंकी दृष्टिमें बुद्धिमान् होनेपर भी वस्तुतः भगवान्‌की अनन्त शक्तिमयी सहज कृपाकी अवहेलना करनेका अपराध ही करता है। जहाँतक बन सके, बाहरके पापोंसे बिलकुल बचकर भगवान्‌का भजन करो। जीवन बहुत थोड़ा है, विचारोंमें ही बिता दोगे तो भजनसे वंचित रह जाओगे।

× × × ×

भजन मन, वचन और तन—तीनोंसे ही करना चाहिये। भगवान्‌का चिन्तन मनका भजन है, नाम-गुण-गान वचनका भजन है और भगवद्भावसे की हुई जीवसेवा तनका भजन है। भजन सर्वोत्तम वही है, जिसमें कोई शर्त न हो, जो केवल भजनके लिये ही हो। तन-मनसे भजन न बन पड़े तो केवल वचनसे ही भजन करना चाहिये। भजनमें स्वयं ऐसी शक्ति है कि जिसके प्रतापसे आगे चलकर अपने-आप ही सब कुछ भजनमय हो जाता है।

और भजनमें आजकलके दुर्बल प्रकृतिके नर-नारियोंके लिये सबसे अधिक उपयोगी और लाभदायक है—भगवान्‌के नामका जप और कीर्तन! बस, जप और कीर्तनपर विश्वास करके नामकी शरण ले लो, नाम अपनी शक्तिसे अपने-आप ही तुम्हें अपना लेगा और नाम-नामीमें अभेद है, इसलिये नामके द्वारा अपनाये जाकर नामी

भगवान्‌के द्वारा तुम सहज ही अपनाये जाओगे। याद रखो, जिसको भगवान्‌ने अपना लिया, उसीका जन्म और जीवन सफल है, धन्य है!

भगवान्‌की रुचि

मनुष्य जैसा चिन्तन करता है, वैसी ही क्रिया होने लगती है और वह क्रमशः वैसे ही वातावरणसे घिर जाता है।

× × × ×

विषय-चिन्तन ही पतन है और भगवच्चिन्तन ही यथार्थ उत्थान है।

विषय-चिन्तन, विषयासक्ति, विषयकामना, विषय-भोग सभी महान् दुःख उत्पन्न करनेवाले हैं और नरकाग्निमें जलाने हेतु हैं। इनसे मनुष्य दुःखकी परम्परामें पड़ जाता है। इनसे छूटनेके लिये बस, भगवच्चिन्तन ही एकमात्र साधन है। कामनाओंकी पूर्ति कामनाओंके विस्तारका हेतु होती है। सच्चा आनन्द कामनाकी पूर्तिमें नहीं, कामनापर विजय प्राप्त करनेमें है।

× × × ×

श्रीभगवान् मंगलमय, आनन्दमय, ऐश्वर्यमय, ज्ञानमय, दयामय, प्रेममय, सौन्दर्यमय, माधुर्यमय और सामर्थ्यमय हैं। वे प्रत्येक प्राणीके स्वाभाविक ही सुहृद् हैं। उनसे माँगना हो तो यही माँगना चाहिये कि 'हे भगवन्! तुम जो ठीक समझो, मेरे लिये वही विधान करो। तुम जो चाहो सो मुझे दो, मैं चाहूँ सो मत दो! ऐसी शक्ति दो, जिससे मेरे मनमें कोई कामना ही न पैदा हो और यदि हो तो तथा वह तुम्हारी इच्छाके विरुद्ध हो तो उसे तुरन्त नष्ट कर दो। उसे पूरी तो करो ही मत।'

× × × ×

भगवान्‌की रुचिके सामने अपनी रुचि रखनेसे कोई लाभ नहीं

होता। उनकी रुचि ही कल्याणमयी है। उनकी रुचिके लिये सदा अपनी रुचिका त्याग कर देना चाहिये।

जो भगवान्‌की रुचिसे होनेवाले सच्चे आनन्दका परम लाभ प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें अपनी आसक्ति, अपनी रुचि और अपनी रतिका पूर्णरूपसे त्याग कर देना चाहिये।

बस, भगवान्‌की जो रुचि है, वही हमारी रुचि हो; भगवान्‌की इच्छा ही हमारी इच्छा हो। हमारे गिरनेपर भगवान् हँसें तो हम भी उस हँसीको देखकर आनन्दमें मतवाले होकर हँस उठें। हमारे गौरव प्राप्त करनेपर यदि भगवान्‌का चेहरा उदास दीखे, उन्हें वह गौरव न रुचे, तो हमें भी उसमें नरकयन्त्रणाका अनुभव हो।

× × × ×

भगवान्‌की रुचिकी अनुकूलताके सिवा और कोई इच्छा न हो, भगवान्‌के चिन्तनको छोड़कर और कोई चिन्तन न हो, समस्त जीवन उन्हींके प्रति निवेदन की हुई एक प्रार्थना हो। हृदयमें केवल उन्हींका सिंहासन रहे। सारे कर्म उन्हींकी सेवाके लिये हों। इस प्रकार सदा सर्वार्पण हुआ रहे। 'हम' पर हमारा अधिकार न हो, भगवान्‌का हो। हमारा 'हम' उनके प्रति अर्पित हो जाय।

× × × ×

हमारा मन, हमारी बुद्धि, हमारी इन्द्रियाँ सर्वत्र, सर्वदा और सर्वथा उन्हींकी चीज बन जायँ और उन्हींकी सेवामें लगी रहें।

भगवान्‌के बिना जीवनमें भयंकरता-ही-भयंकरता भरी है; क्योंकि सारा सौन्दर्य, सारा माधुर्य, सारा प्रकाश, सारा ऐश्वर्य, सारी विभूति, सारा प्रेम, सारा ज्ञान, सारा यश, सारी श्री, सारी शक्ति, सारा बल, सारा पुरुषार्थ तो उन्हींमें है। उनके बिना जो कुछ है, वह तो भयानक है, दुःखमय है, विकराल है, प्रलयपीड़ा है, एक घोर यन्त्रणामय नरक है।

विपत्तिकी अवस्थामें विश्वास

भगवान्‌में विश्वास करनेवाले सच्चे वे हैं, जिनका विश्वास विपत्तिकी अवस्थामें भी नहीं हिलता। जो सम्पत्तिमें भगवत्कृपा मानते हैं और विपत्तिमें नहीं, वे सच्चे विश्वासी नहीं हैं।

× × × ×

विपत्तिमें धैर्य न खोकर जो लोग भगवत्कृपाके विश्वासपर डटे रहते हैं और सत्यके पथसे जरा भी नहीं डिगते, उनकी विपत्ति बहुत ही शीघ्र महान् सम्पत्तिके रूपमें बदल जाती है और क्लेश तथा अशान्ति तो उन्हें किसी अवस्थामें नहीं होते।

जो विपत्तिमें भगवत्कृपाका दर्शन करते हैं, वे ही भगवत्कृपाके यथार्थ अधिकारी हैं।

× × × ×

किसीसे कुछ भी न माँगोगे, लोग तुम्हें देखनेके लिये तुम्हारे पीछे-पीछे फिरेंगे। मान न चाहोगे, मान मिलेगा। स्वर्ग न चाहोगे, स्वर्गके दूत तुम्हारे लिये विमान लेकर आयेंगे। इतनेपर भी तुम इन्हें स्वीकार न करोगे तो भगवान् तुम्हें अपने हृदयसे लगा लेंगे।

उस मनुष्यका जीवन पापमय है, जो यश, मान, पूजा, प्रतिष्ठा आदिके लिये भगवान्‌को भूला रहता है। और वह तो इससे भी बहुत ही नीचा है, जो शरीरके आराम और इन्द्रियोंके भोगके लिये भगवान्‌को भूलकर धनादिके संग्रहमें लगा रहता है। निर्दोष तो वह भी नहीं है, जो धर्मके नामपर भगवान्‌को भूल जाता है; क्योंकि जो धर्म भगवान्‌को भुलाता है, निर्दोष धर्म ही नहीं है। सच्चे धर्म और भगवान्‌का तो वैसा ही सम्बन्ध है, जैसा शरीर और प्राणोंका! भगवान्‌से रहित धर्म तो प्राणहीन शरीरके समान मुर्दा है।

× × × ×

बीती हुई बातके लिये न रोओ; आगे क्या होगा; उसकी भी चिन्ता

न करो; बस, वर्तमान सुधारो। साहस, उत्साह, श्रद्धा, तत्परता, संयम और विवेकके द्वारा भगवत्कृपाके बलपर डटकर लग जाओ—वर्तमानको कल्याणमय बनानेमें। फिर भविष्य तो अपने-आप ही कल्याणमय बन जायगा।

जो वर्तमानके सुधारकी परवा न करके भविष्य-सुखके सपने देखते हैं और भूतके लिये रोते हैं, उनके हिस्सेमें तो रोना ही आया है।

× × × ×

संसारकी किसी वस्तुको पाकर अहंकार न करो, सभी विषयोंमें एक-से-एक बढ़कर पड़े हैं। अपनेको छोटा मानकर नम्रता और विनयके साथ सबसे सम्मानयुक्त व्यवहार करो। तभी सच्ची राह मिलेगी। जो अहंकारमें अन्धे हो रहे हैं, वे तो पथभ्रष्ट हैं।

सबका सम्मान करो, सबका हित करनेकी चेष्टा करो, सबको सुख पहुँचानेका ध्यान रखो। फिर तुम्हारा हित और तुम्हारा सुख तो तुम्हारे संगी ही बन जायँगे।

साधना

किसी साध्य वस्तुकी प्राप्तिके लिये जो प्रयत्न किया जाता है उसे 'साधना' कहते हैं। जगत्में सभी जीव सुखकी इच्छा करते हैं, सुख ही सबका साध्य है। सुख भी ऐसा—जो सबसे बढ़कर हो, जिसमें किसी तरहकी जरा भी कमी न हो, जो सदा एक-सा बना रहे, कभी घटे नहीं—कभी हटे नहीं; जो अनन्त हो, असीम हो, नित्य हो और पूर्ण हो। ऐसा सुख विनाशी और परिवर्तनशील संसारकी किसी वस्तुमें हो नहीं सकता। यहाँ अनन्त, असीम, अखण्ड, नित्य और पूर्ण कुछ भी नहीं है। नित्य, सत्य, सनातन, सम, एकरस, अनन्त, असीम, अखण्ड और पूर्ण तो एकमात्र भगवान् ही हैं। इसलिये वही पूर्ण सुखस्वरूप हैं और वही सबके परम साध्य हैं। मनुष्य चाहे समझे नहीं,

कहे नहीं, परन्तु वह 'पूर्ण' को चाहता है। इसलिये वह चाहता है 'भगवान्' को ही। जगत्‌में उसे कहीं भी पूर्णता दीखती नहीं, वह सभी अवस्थाओंमें बड़े-से-बड़ा सम्राट् और इन्द्र बन जानेपर भी अभावका—अपूर्णता ही अनुभव करता है। उसके मनमें कोई कमी खटकती ही रहती है, इसीलिये वह प्रत्येक स्थितिमें अतृप्त और असन्तुष्ट रहता है और किसी दूसरी स्थितिकी खोजमें लगा रहता है। परन्तु वह मोहवश पूर्णतम भगवान्‌की ओर न जाकर दुःख और अतृप्तिकी उत्पत्ति करनेवाले, अभावभरे भोगोंमें ही सुख मानकर उन्हींकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करता है, इसीसे वह सच्चे सुखसे सदा वंचित रहता। वह करता है अपनी जानमें सुखकी साधना, परन्तु उसे मिलता है दुःख, असफलता, अशान्ति और अतृप्ति! इसीलिये भोगोंके निमित्त किया जानेवाला प्रयत्न यथार्थमें साधना नहीं है। साधना शब्दकी सार्थकता वस्तुतः वही है, जहाँ वह परमानन्दस्वरूप श्रीभगवान्‌के लिये होती है।

अतएव सबसे पहले यह निश्चय करो कि हमारे साध्य हैं—एकमात्र श्रीभगवान् और साधना है—अपनी स्थिति और शक्तिके अनुसार भगवान्‌की प्राप्तिके लिये किये जानेवाले प्रयत्न।

यह याद रखो कि भगवान् एक हैं; एक ही हैं। एक ही भगवान् लीलाके लिये असंख्यों रूप और असंख्य नामोंसे प्रकाशित और पूजित होते हैं। कोई कैसी भी साधना करे, यदि वह भगवान्‌के लिये है तो अन्तमें उसको वही भगवान् मिलते हैं, जो दूसरोंको दूसरी साधनाओंके द्वारा मिलते हैं। पाते हैं सब एक ही सत्यको, पहुँचते हैं सब एक ही जगह—रास्ते अलग-अलग हैं। रास्ता सबके लिये एक हो भी नहीं सकता। जैसे एक ही श्रीकाशीजीको जानेवाले भिन्न-भिन्न दिशाओंके यात्री अपनी-अपनी दिशाओंसे भिन्न-भिन्न मार्गोंद्वारा जाते हैं और जैसे वे अपनी मानसिक, आर्थिक और शारीरिक शक्तिके अनुसार पैदल, बैलगाड़ीपर, घोड़ोंपर, रेलपर अथवा वायुयानपर सवार होकर जाते हैं, और उसीमें उन्हें सुगमता भी होती है, वैसे ही भिन्न-भिन्न रुचि और

संस्कारके मनुष्योंको अपने-अपने अधिकार, शक्ति, रुचि, बुद्धि, संयम, अभ्यास और इच्छा आदिके तारतम्यसे उन्हींके अनुसार विभिन्न साधनाओंके द्वारा तीव्र या मन्द गतिसे भगवत्प्राप्तिके मार्गको तय करना पड़ता है। जो लोग ऐसा मानते हैं कि सबको एक ही साधन करना चाहिये, वे भूलमें हैं। अतएव श्रद्धा और विश्वासके साथ अपने मार्गपर तेजीके साथ चलते रहो। जो लोग नये-नये साधनोंके लिये ललचाकर बार-बार पुराने साधन छोड़ते रहते हैं, वे साधनोंके बदलनेमें ही अपने जीवनका बहुमूल्य समय पूरा कर देते हैं और साध्यतक नहीं पहुँच पाते। साध्यपर दृष्टि रखते हुए अपने मार्गसे जरा भी विचलित न होकर सदा आगे बढ़ते रहो, प्रकाश अपने-आप ही मिलता रहेगा।

अपने साधनमें साध्यके समान ही आदर-बुद्धि रखो। जो पुरुष साधनाकी अवहेलना या तिरस्कार करता है, उसे साध्य कभी प्राप्त नहीं होता। अवश्य ही अपने लिये साधनाका चुनाव करते समय अच्छी तरहसे जाँचकर देख लो, अनुभवी पुरुषोंसे सलाह ले लो या कोई सद्गुरु प्राप्त हो सकें तो उनका आदेश प्राप्त कर लो, फिर लग जाओ अनन्यतासे तत्पर होकर उसीमें। साधनामय बन जाओ। अपने मन, इन्द्रियोंको साधनाके साथ घुला-मिलाकर साधना-स्वरूप बना दो।

एक बात जरूर याद रखो—कोई किसी भी राहसे कैसे भी जाय, जैसे उसको राहखर्चकी, रास्तेमें खान-पान आदिकी आवश्यकता होती है, वैसे ही भगवत्प्राप्तिके मार्गमें सद्गुणोंकी, सद्विचारोंकी, सत्कर्मोंकी—एक शब्दमें दैवी सम्पत्तिकी* आवश्यकता होती है। इसके बिना साधनाका सफल होना असम्भव नहीं तो असम्भव-सा

---

* निर्भयता, अन्तःकरणकी पवित्रता, ज्ञानयोगमें दृढ़ स्थिति, उदारता, इन्द्रियोंका दमन, भगवदर्थ कर्म, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, परनिन्दा, त्याग, प्राणियोंपर दया, लोभहीनता, कोमलता, बुरे कर्मोंमें लज्जा, चपलताका अभाव, तेज, क्षमा, धैर्य, शुद्धता, द्रोहहीनता और निरभिमानता।

(गीता १६। १—३)

अवश्य है। इसलिये निरन्तर दैवी सम्पदाके प्राप्त करनेकी कोशिश करते रहो। प्रत्येक क्रियामें सावधान रहो—कहीं अपने साध्यको भूल तो नहीं रहे हो, कहीं अपनी साधनामें प्रमाद तो नहीं हो रहा है, कहीं साध्य और साधनाके विरुद्ध तो कुछ नहीं कर बैठे हो। साधनासे हटानेवाले हजारों प्रलोभन और भय तुम्हारे मार्गमें आयेंगे, तुम्हें लालचमें डालकर और दुःखोंकी बड़ी डरावनी मूर्ति दिखाकर डिगानेकी चेष्टा करेंगे, पर सावधान, कहीं डिगना नहीं। याद रखो—भगवान् निरन्तर तुम्हारे साथ हैं और तुम्हारी सच्ची साधनामें सदा तुम्हारे सहायक हैं। उनकी कृपासे तुम उन्हें अवश्य ही प्राप्त करोगे बेखबर होकर कहीं रास्तेसे ही न लौट पड़ना। याद रहे—सावधानी ही साधना है।

सभी प्रकारके साधकोंके लिये नीचे लिखी बातें जानने और समझनेकी हैं। इनको पढ़कर तुम अपने लिये जितना और जो कुछ ठीक हो उसे ग्रहण करो।

साधनाके विघ्न बहुत-से हैं, उनमें कुछ ये हैं—

आहारदोष, अस्वस्थता, आलस्य, प्रमाद, पुरुषार्थहीनता, अश्रद्धा, कुतर्क, अधैर्य, अनिश्चय, संशय, असंयम, असहिष्णुता, अपवित्रता, प्रसिद्धि, पुजवानेकी इच्छा, मानकी चाह, घृणा, द्वेष, निर्दयता, दुराग्रह, चपलता, जल्दबाजी, परदोषदर्शन, परनिन्दा, परचर्चा, बाहरी वेश-भूषा, विवाद या शास्त्रार्थ, शरीरके आरामकी चाह, विलासिता, दूसरेसे सेवा करानेकी वृत्ति, लोकरंजनमें रुचि, कुसंग, साधनाके प्रतिकूल या साधनाके लिये अनावश्यक साहित्यका अध्ययन, माता-पिता और गुरुजनोंका तिरस्कार, शास्त्र और संतोंके वचनोंमें अविश्वास, भजनमें लापरवाही, सर्वथा कर्मत्याग अथवा बहुधंधीपन, दूसरोंके साधन और लक्ष्यके प्रति लोभ, दूसरेके साध्य, साधन और धर्मसे द्रोह, साधनाका अभिमान, ब्रह्मचर्यका खण्डन, विपत्तिमें घबराकर और सम्पत्तिमें फूलकर कर्तव्यको भूल जाना, किसी मनुष्य, स्थान और

वस्तुविशेषमें ममता, आश्रमादिकी स्थापना और लक्ष्यको भूल जाना।

बुरी कमाईका, चोरीके पैसोंका, दूसरेके हकका अन्न न खाओ, खान-पान, परिश्रम-व्यायाम और नियमादिके द्वारा शरीरको नीरोग रखो; आजका काम कलपर, अभीका काम पीछेपर मत छोड़ो, करनेयोग्य कर्मका त्याग और न करनेयोग्य हानिकर कामोंका ग्रहण न करो, हमेशा उद्योगशील और पुरुषार्थी बने रहो, प्रारब्धको दोष लगाकर सत्कर्म और भजनसे चित्तको न हटाओ; भगवान्‌पर, उनकी दयापर, उनकी महान् शक्तिपर; आत्माके अनन्त बलपर और अपने पुरुषार्थपर श्रद्धा रखो; बेसिर-पैरका व्यर्थ तर्क न करो, धीरज छोड़कर साधनाका त्याग कभी न करो, मनमें निश्चय रखो कि साधनामें सिद्धि मिलेगी ही या सिद्धि प्राप्त करके ही छोड़ेंगे। मनमें किसी सन्देहको न आने दो; संशयात्मा पुरुष गिर जाते हैं। आहार, व्यवहार, शयन, भाषण और चिन्तनमें—सभी बातोंमें संयम करो—आसन-प्राणायामादिसे शरीरका संयम करो, अपना काम अपने हाथसे करो, शरीरसे परिश्रम करो, हिंसा और मैथुनादिसे बचो, सत्य-मधुर-हितकर और परिमित बचनोंसे वाणीका संयम करो—झूठ न बोलो, कड़वी बात न कहो, किसीकी चुगली न करो, शाप न दो, हितकी बात कहो और व्यर्थ चर्चा मत करो—फजूल न बोलो; मनके विषाद, क्रूरता, चंचलता, अपवित्रता और व्यर्थ चिन्तन आदि दोषोंका त्याग करके मनका संयम करो। मनमें कभी शोक-विषाद न करो; किसीका बुरा न चाहो, मनको भगवान्‌के ध्यानमें लगाओ, मनके अन्दर द्वेष, वैर, क्रोध, हिंसा, काम आदि अपवित्र वृत्तियोंको न रहने दो; मनके द्वारा विषयोंका चिन्तन न करके केवल श्रीभगवान्‌का और भगवत्-सम्बन्धी साधनाका चिन्तन करो। बहुत कम बोलो और बहुत कम संसारका चिन्तन करो। इन्द्रियोंको विषयोंसे रोको। जन्म, यज्ञोपवीत, विवाह, कर्णछेदन और श्राद्धादिमें अधिक खर्च न करो, गहने-कपड़ोंमें अधिक धन मत लगाओ। भोजनका संयम

रखो—बहुत कीमती चीजें मत खाओ, मांस, मद्य, अंडे आदिका सर्वथा त्याग करो; अपवित्र और जूँठी चीजें न खाओ, ज्यादा मत खाओ, स्वादके लिये रोग पैदा करनेवाली चीजें मत सेवन करो। नशीली चीजें त्याग दो। तम्बाकू, भाँग, बीड़ी आदि छोड़ दो। खर्च सभी बातोंमें कम करो। अधिक खर्च करनेवालेके धनका अभाव होता है और उसे धनकी चाह बनी रहती है। इससे उसका चित्त सदा ही चंचल और पापयुक्त रहता है। उससे साधना नहीं बन सकती। अपनी आवश्यकताओंको जितना घटा सको, घटा दो। देखा-देखी न करो, बहुत शान्ति मिलेगी। संन्यासी हो तो अपने आश्रमके अनुरूप मन-वचन-शरीरका संयम करो। संयमके बिना साधना बहुत कठिन है। सुख-दुःख, हानि-लाभ, सर्दी-गरमी आदि द्वन्द्वोंको और विपत्तियोंको भगवान्की देन समझकर सहन करो। सुख और सम्पत्तिको भी सहन करो। जो सुख-सम्पत्तिको पाकर हर्षके मारे कर्तव्यच्युत हो जाते हैं, वे भी असहिष्णु ही हैं। दुःखमें उद्विग्न मत होओ; सुखमें हर्षित मत होओ। शरीर और मनको पवित्र रखो, प्रसिद्धिसे सदा बचो। साधकके लिये प्रसिद्धि विषके तुल्य त्याज्य है। प्रसिद्धि होनेपर लोगोंकी भीड़ लगेगी; जगत्का संग बढ़ेगा, परिग्रह बढ़ेगा, साधन लुट जायगा। उपदेशक मत बनो—अपने-आपको साधक बोलकर प्रसिद्ध न करो, पुजवानेकी और मानकी चाह कभी भूलकर भी न करो, जिस साधकके मनमें पुजवानेकी और मान प्राप्त करनेकी चाह पैदा हो जाती है, वह कुछ ही दिनोंमें भगवत्प्राप्तिका साधक न रहकर भोगोंका साधक बन जाता है। किसी भी जीवसे घृणा न करो, किसीसे द्वेष न करो—किसीके साथ निर्दयता मत करो। ये दोष हैं—पाप हैं और सर्वथा त्याज्य हैं। यों तो अनुराग और दया भी बन्धनकारक हैं, परन्तु उनका उपयोग भगवदर्थ कर्तव्य-बुद्धिसे करना चाहिये, किसी बातपर हठ मत करो; शरीर-मन-वाणीसे चपलता—व्यर्थ कार्य न करो,

जल्दबाजीमें किसी कर्मको न कर बैठो और न छोड़ बैठो—किसी व्याख्यानको सुनते ही, पुस्तक पढ़ते ही, बिना सोचे-समझे जोशमें आकर घर-द्वार छोड़कर न निकल भागो। यों भागनेवाले जोश उतरनेपर प्राय: पीछे बहुत पछताया करते हैं। किसी आरम्भ किये हुए कामको जल्दी करके न बिगाड़ो। जो कुछ करो व्यवस्था, धीरता और नियमके साथ श्रद्धा-सत्कारपूर्वक अच्छी तरह करो। न बीचमें अटको और न घबराकर छोड़ो। दूसरेके दोष न देखो, दूसरेकी निन्दा न करो, परचर्चाका सावधानीसे त्याग करो। अपनी वेश-भूषा साधारण रखो; जटा बढ़ाना, मूँड़ मुड़ाना, किसी खास ढंगसे कपड़े पहनना, खास तरहसे चलना—मतलब यह कि लोग कुछ विलक्षणता देखकर तुम्हारी ओर खिंचें, ऐसा पहनावा न पहनो। जैसे साधारण लोग रहते हैं, वैसे ही रहो। किसीसे विवाद या शास्त्रार्थ न करो—तुम्हें अपनी साधनासे जरा भी अवकाश नहीं मिलना चाहिये। शरीरके आरामकी चाह न करो—शरीरके आरामके पीछे पागल रहनेवाले साधना कभी नहीं कर सकते। फैशन और शौकीनीके फेरमें बिलकुल न पड़ो। दूसरेसे सेवा न कराओ; जो सेवा करानेके लिये साधना करते हैं, वे शरीरका आराम और भोग चाहनेवाले हैं। भगवान्‌को चाहनेवाले नहीं हैं। ऐसी चेष्टा करो जिसमें मनुष्यकी अपने आत्मापर श्रद्धा हो—अपने पुरुषार्थपर श्रद्धा हो—वह अपनी सेवा आप करे। किसीकी आत्मश्रद्धाको न डिगाओ, न डिगने दो और न किसीकी श्रद्धाको आत्मासे हटाकर अपनी ओर लगानेकी चेष्टा करो। लोगोंको रिझानेकी चाह और चेष्टा छोड़ दो, जो लोगोंको रिझानेके उद्‌देश्यसे साधन, भजन, कीर्तन और उपदेशका प्रदर्शन करता है, वह तो नाटकका अभिनयमात्र करता है। वह साधक नहीं है। कुसंगका त्याग करो—बुरे संगसे बुरी वृत्ति होती है और सर्वथा पतन हो जाता है। कुसंगके समान नाशकारी विघ्न बहुत थोड़े हैं। जलवायु (वातावरण), जनसमुदाय, स्थान, काल,

कर्म, जन्म, ध्यान, मन्त्र, संस्कार और साहित्य—ये सभी सुसंग या कुसंगका काम देते हैं—भगवत्सम्बन्धी सात्त्विक होनेपर ये सभी सुसंग हैं और विषय-सम्बन्धी राजस-तामस होनेपर कुसंग हैं। सावधानीसे कुसंगका त्याग करो। जिस संगसे भजनमें अरुचि, शरीरके आराम और भोगोंकी चाह, दैवी सम्पत्तिमें अवहेलना होती या बढ़ती हो, उसीको कुसंग समझो और उसका तुरन्त त्याग कर दो। ऐसी पुस्तकें कभी न पढ़ो, जिसमें तुम्हारी साधनासे प्रतिकूल भाव हों या तुम्हारी साधनाके लिये जिन भावोंकी आवश्यकता न हो। सिनेमा, नाटक आदि न देखो; ऐसे चित्र न देखो—ऐसे गाने न सुनो, जिनसे चित्तमें विकार हो और साधनामें शिथिलता आती हो। माता, पिता, गुरुजनोंकी श्रद्धापूर्वक सेवा करके उनका आशीर्वाद प्राप्त करो। उनके आशीर्वादसे तुम्हारी साधनामें सुविधा होगी। उसका तिरस्कार कभी न करो। महान् वैराग्यकी प्रेरणासे बुद्धभगवान्‌की तरह गृहत्याग करना दूसरी बात है, पर वह आदर्श सबके लिये नहीं है। शास्त्र और सन्तोंकी वाणीपर विश्वास करो—कोई बात तुम्हारी समझमें न आवे तो उसका तिरस्कार न करो, उसे भ्रान्त न समझो, भजनमें कभी चूक मत पड़ने दो। साधकके लिये भजन सर्वशिरोमणि धन है। जी-जानसे इसकी रक्षा करो और सदा इसीमें लगे रहो। कर्मका बिलकुल त्याग करके निकम्मे मत बन जाओ। पूर्ण वैराग्य हुए बिना काम छोड़ बैठनेवालोंसे भजन, साधन तो होता नहीं—उनका समय प्रमाद, आलस्य, व्यर्थ बकवादमें लगता है—वे व्यसनोंके शिकार हो जाते हैं और साधनपथसे गिर जाते हैं। न इतना अधिक काम ही करो कि जिससे आत्मविचारके और भजन-साधनके लिये समय ही न मिले। युक्ताहार-विहारपर ध्यान रखो! दूसरेके साध्य और साधनकी बात सुनकर जी न ललचाओ—न दूसरेके साध्य, साधन और धर्मसे द्रोह ही करो। यह समझो कि तुम्हारे ही इष्टदेव श्रीकृष्ण अन्य लोगोंके द्वारा श्रीराम, श्रीशंकर, श्रीदुर्गा या अन्यान्य

नाम-रूपोंसे पूजित होते हैं; और पूजाके विभिन्न प्रकारोंसे सब तुम्हारे ही श्रीकृष्णकी उपासना करते हैं। निराकार, निर्गुण भी श्रीकृष्ण ही हैं। वे ही अचिन्त्य अनिर्वचनीय सच्चिदानन्दघन सर्वशक्तिमान् सर्वोपरि पूर्ण पुरुषोत्तमतत्त्व हैं। इसी प्रकार यदि तुम राम, शिव या निर्गुण ब्रह्मके उपासक हो तो, औरोंके लिये वैसा ही समझो। हैं सब एक ही—परन्तु तुम्हें वे ही इष्ट हैं, जिनकी तुम उपासना करते हो। जिसकी अपने साधन और इष्टमें सर्वोच्च बुद्धि नहीं होती, उसको सर्वोच्च सत्यकी प्राप्ति नहीं होती। ब्रह्मचर्यका पालन करो। ब्रह्मचारी-संन्यासी हो तो अखण्ड ब्रह्मचर्य रखो, गृहस्थ हो तो अपनी विवाहिता पत्नीके प्रति शास्त्रोक्त संयमपूर्ण बर्ताव करो। स्त्री-पुरुष दोनों स्वेच्छासे संयमशील होनेका नियम लें तो बहुत उत्तम है। विपत्ति और सम्पत्तिमें समचित्त रहो। कहीं ममता न करो और अपने लक्ष्यको सदा-सर्वदा याद रखो। प्रत्येक चेष्टा लक्ष्यकी सिद्धिके लिये ही करो। इसीमें कल्याण है।

शुभका ग्रहण करो

स्त्रियोंके अंग, हाव-भाव, सौन्दर्य और चेष्टा आदिका, धनसे प्राप्त होनेवाले गौरव, भोग, आराम और विलासका और मान-सम्मानसे मिलनेवाले मिथ्या काल्पनिक सुखोंका कभी स्मरण न करो। इनके सम्बन्धकी बात ही मत सुनो। इनके स्मरणसे मनमें कामविकार होगा, भोगसुखकी इच्छा उत्पन्न होगी, ईर्ष्या-द्वेष और दुःखोंका उदय होगा! कामनाकी आग हृदयमें धधक उठेगी। भगवान्की ओरसे चित्त हट जायगा। असल बात यह है कि जिससे चित्तमें काम, क्रोध, लोभ आदि विकार उत्पन्न हों, ऐसी किसी भी वस्तुका देखना, सुनना, स्पर्श करना और स्मरण करना छोड़ दो।

× × × ×

शुभको देखो, शुभको सुनो, शुभको स्पर्श करो, शुभका स्मरण करो। शुभ वही है जो चित्तमें निर्मलता, प्रसाद, शान्ति, सद्‌भाव, विषय-वैराग्य और प्रभुभक्तिको उत्पन्न करके चित्तको प्रभुकी ओर लगा दे। इसके सिवा और जो कुछ है, सभी अशुभ है।

× × × ×

बुरी पुस्तकें मत पढ़ो, बुरे नाटक-सिनेमा मत देखो, बुरे स्थानमें मत रहो, बुरी बातें न सुनो, बुरी बात जबानसे न कहो, बुरा चिन्तन न करो, मतलब यह कि बुरेसे सदा सावधानीसे बचते रहो।

× × × ×

दुर्गुणों और दुष्कर्मोंके भयानक परिणामोंको सोचो। नाना प्रकारके शारीरिक रोग, मानसिक पीड़ा, स्मरणशक्तिका विनाश, उत्साहभंग, विषाद, शोक, महान् निन्दा, सुख-सौन्दर्यका नाश, दण्ड, अकालमृत्यु, नरकोंकी प्राप्ति और पशु-पक्षी आदि योनियोंमें जन्म आदि सब दुर्गुण और दुष्कर्मोंके ही परिणाम हैं। तुम देखते हो—गरीब कमजोर बैलोंको कितना बोझ उठाना पड़ता है, भूख-प्यास सहते हुए डंडोंकी मार खानी पड़ती है—यह सब मनुष्य-जीवनके दुष्कर्मोंका—पापोंका ही परिणाम है। याद रखो—पाप करते समय जितना सुख माना जाता है, उससे बहुत ही अधिक अत्यन्त भयानक दुःख उसके परिणाममें भोगना पड़ता है।

× × × ×

साथ ही सद्‌गुण और सत्कर्मसे प्राप्त होनेवाले लाभोंपर विचार करो। सद्‌गुणी और सदाचारी पुण्यात्मा पुरुषोंकी जीवनियाँ पढ़ो। उनका जीवन कितना सुखमय होता है और अन्तमें उन्हें किस प्रकारके परम सुखकी प्राप्ति होती है। याद करो—ध्रुव, प्रह्लाद, भीष्म आदिके पवित्र जीवनोंको।

× × × ×

यह सदा स्मरण रखो कि जो लोग दुर्गुणी और दुराचारी हैं,

वे नित्य दुःखके केन्द्रमें ही पड़े हैं! उनका जीवन निरन्तर एक दुःखसे दूसरे दुःखमें, एक भयसे दूसरे भयमें और एक मृत्युसे दूसरी मृत्युमें प्रवेश करता रहता है। सुख, शान्ति और अमरत्व कभी उन्हें प्राप्त होता ही नहीं।

× × × ×

सच्चे सुखी वही हैं—जो सद्‌गुणी और सदाचारी हैं। जिन्होंने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि शत्रुओंको जीत लिया है। ऐसे पुरुष सदा ही सुख, शान्तिमें निवास करते हुए अन्तमें अमरत्व और परम शान्तिको प्राप्त होते हैं।

बुराईसे बचो

बुरे संगसे सदा बचो। भागवतमें कहा है—बुरे संगसे—सत्य, पवित्रता, दया, मौन, बुद्धि, श्री, लज्जा, यश, क्षमा, शम, दम और ऐश्वर्य आदि सब नष्ट हो जाते हैं। बुरे संगसे मन विषयोंका ही निवास बन जाता है, उसमें भगवत्-चिन्तनके लिये गुंजाइश ही नहीं रह जाती।

× × × ×

बुरा संग मनुष्योंका, स्थानका, वातावरणका, पुस्तकोंका, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—इन इन्द्रिय-विषयोंका और पुराने संस्कारोंका हो सकता है। इसलिये जहाँतक बने, अच्छे मनुष्योंका संग करो, अच्छे स्थानमें रहो, अच्छे वातावरणका सेवन करो, अच्छी पुस्तकें पढ़ो, इन्द्रियोंके द्वारा तमाम अच्छे विषयोंको ही ग्रहण करो, पुराने गन्दे संस्कारोंके उठते ही चित्तको दूसरे अच्छे विषयोंमें लगाकर उन्हें हटा दो।

बुराईको किसी प्रकार किसी अंशमें भी कहीं भी स्थान मत दो। कभी मनमें यह अभिमान मत करो कि मैं साधनामें बहुत आगे बढ़ा

हूँ, जरा-सी बुराई मेरी क्या कर सकेगी। बुराईपर—पापपर कभी दया मत करो। अंकुर दीखते ही काट डालो—जड़से उखाड़ डालो। बुराई आती है पहले बीजरूपमें, फिर बड़ा वृक्ष बनकर चारों ओर फैल जाती है, सब तरफ छा जाती है बेलकी तरह। बुराईपर कभी विश्वास न करो।

दूसरोंकी बुराइयाँ मत देखो। बुराइयाँ देखनेसे बुराईका चिन्तन होता रहता है, और जैसा चिन्तन होता है, चित्त भी वैसा ही बनता चला जाता है। बुराइयोंका चिन्तन करते-करते यदि तुम्हारा चित्त बुराइयोंके साथ तदाकार हो गया तो फिर तुम्हें सब जगह बुराई ही दीख पड़ेगी। बुराईसे पिण्ड छूटना मुश्किल हो जायगा।

बुराई देखनी हो, अपनी देखो। निरन्तर आत्मनिरीक्षण करते रहो। पल-पलका हिसाब रखो—तन-मनसे कितनी और कैसी बुराइयाँ हुईं। फिर उनसे बचनेकी प्रतिज्ञा करो।

भगवान्‌से प्रार्थना करो—वे बुराईसे बचावें। मनमें निश्चय करो कि श्रीभगवान्‌के बलसे अब मेरे अन्दर कोई बुराई नहीं पैदा हो सकेगी। मुझसे कोई बुराई नहीं हो सकेगी। भगवान्‌के कृपा-बलपर तुम्हारा पक्का विश्वास होगा और मनमें बुराइयोंसे बचनेका दृढ़ निश्चय होगा तो अवश्य-अवश्य तुम सब बुराइयोंसे मुक्त हो जाओगे। घबराओ नहीं। बुराइयोंकी ताकत भगवान्‌की कृपाकी शक्तिके सामने अत्यन्त ही तुच्छ है।

स्वरूपको सँभालो

याद रखो—तुम परमात्माके सनातन अंश हो, परमात्माकी दृष्टिसे तुम सदा परमात्मा ही हो। परमात्मा जिस प्रकार शुद्ध-बुद्ध-नित्यमुक्त हैं। वैसे ही तुम भी शुद्ध-बुद्ध-नित्यमुक्त हो। परमात्माकी ही भाँति तुम भी अनन्त, असीम, अपरिमेय, शाश्वत, ज्ञानमय और

आनन्दमय हो; क्योंकि तुम उन्हीं पूर्णके पूर्ण सनातन अंश जो हो।

× × × ×

अपने इस यथार्थ स्वरूपपर विश्वास करो, इस वास्तविक स्वरूपको पहचानो। तुम सत्यको देख सकते हो, तुम्हारा ज्ञान सत्यमय है, तुम सत्य ही हो। अपने इस सत्यस्वरूपमें स्थित हो जाओ।

× × × ×

तुम सदा ही बन्धनरहित हो। अज्ञान, अविद्या, माया—ये सब तो तुम्हारी क्रीडा-कल्पना हैं। तुम असीम हो, तुम स्वयं ही अपने अन्दर विविध रूपोंमें विलास करते हो। पर अपने स्वरूपको भूल जानेके कारण तुम अपनेको मायाके बन्धनसे बँधे मान रहे हो। स्वरूपकी सच्ची स्मृति होते ही यह मिथ्या बन्धन टूट जायगा। सपनेसे जाग जानेकी भाँति तुम स्वरूपमें जाग जाओगे। असलमें तो कोई बन्धन है ही नहीं, कभी हुआ ही नहीं; यह तो भ्रम है—इस भ्रमको छोड़ दो, फिर बन्धनकी कल्पना भी नहीं रहेगी। यों तो यह भ्रम भी तुम्हारा विलास ही है। एक अखण्ड, असीम, आत्मस्वरूप तुम-ही-तुम हो।

× × × ×

तुम नित्य, असीम, सुखस्वरूप हो, दुःख-शोकका तुम्हारे अन्दर लेश भी नहीं है। तुम शुद्धस्वरूप हो, पाप-प्रपंचका तुम्हारे अन्दर लेश भी नहीं है। तुम अनन्त अखण्ड सत्तास्वरूप हो, मृत्युका—विनाशका तुम्हारे अन्दर लेश भी नहीं है। तुम ज्ञानस्वरूप हो, नित्य चेतन हो, अज्ञानका और जडताका तुम्हारे अन्दर लेश भी नहीं है। अन्दर और बाहर सर्वत्र तुम-ही-तुम हो, फिर इन दुःख, पाप, विनाश, अज्ञान और जडताको रहनेके लिये स्थान ही कहाँ है? यह तो तुम्हारी ही कल्पना है। स्वरूपतः तुमसे भिन्न अगर कुछ है तो वह केवल तुम ही हो। सर्वत्र तुम्हारा ही प्रसार और विस्तार है।

× × × ×

जैसे एक ही आकाश—आकाशसे ही उत्पन्न पार्थिव वस्तुओंसे बने हुए नगर, मकान, कमरे, घड़े आदिके भेदसे अलग-अलग छोटे-छोटे भागोंमें विभक्त दीखता है, जैसे एक ही पुरुष स्वप्नमें अपने ही संकल्पसे अपने ही अंदर नाना प्रकारकी सृष्टिरचना करके विभिन्न विचित्र स्वरूपों और घटनाओंको देखता है, वैसे ही एक ही अखण्ड आत्मामें स्थावर-जंगमात्मक समस्त जगत् दीखता है। आत्मा ही अपने संकल्पसे इन सबको रचकर स्वयं ही इन सबको देखता है। वस्तुतः ये दृश्य, दर्शन उस द्रष्टा आत्मासे अभिन्न हैं। वह आत्मा तुम ही हो। तुम जगत्‌की दृष्टिमें जीव हो, मायाकी नजरसे नित्य शुद्ध-बुद्ध स्वप्रकाश परमात्मासे पृथक् दीखते हो—स्वरूपतः तुम परमात्मासे अभिन्न एक अखण्ड आत्मा ही हो।

× × × ×

अपने इस स्वरूपमें स्थित होकर देखो—तुम्हारे सिवा और कुछ है ही नहीं। तुम एक, नित्य, सत्य, सनातन, अनादि, अनन्त, अखण्ड, अपार, अव्यय, कूटस्थ, अपरिमेय, अचिन्त्य, सच्चिदानन्दघन हो। बस, ऐसी दृष्टि पाते ही तुम मुक्त हो जाओगे। मुक्त तो हो ही। बन्धनके स्वकल्पित भयसे जो अशान्त हो रहे हो—भ्रमका नाश होनेपर वह अशान्ति दूर हो जायगी और तुम अपने स्वरूपभूत प्रशान्त महासागरमें मिलकर अपने शाश्वत शान्तिस्वरूपका अनुभव करोगे। यह अनुभूति भी तुम्हारे स्वरूपसे अभिन्न ही होगी।

सब कुछ एक भगवान् ही हैं

द्वैत-अद्वैत, व्यवहार-परमार्थ, दृश्य-द्रष्टा, भाव-अभाव, प्रकृति-पुरुष जो कुछ भी कहो, सब एक भगवान् ही हैं। जहाँ जगत्‌का अत्यन्त-अभाव है, वहाँ भगवान् ही अभावरूप है और जहाँ जगत् है वहाँ भगवान् ही उसके अभिन्न-निमित्तोपादान कारणरूप हैं।

वास्तवमें भगवान् ही आनन्दसत्तास्वरूप निस्पन्द शुद्ध चेतन हैं और भगवान् ही अनन्त विश्वसत्तारूप चिद्विलास हैं। इतना होनेपर भी साधकको अभ्यासका आरम्भ दोनोंको अलग-अलग मानकर ही करना चाहिये। दृश्य-प्रपंच जड है, अनात्म है, केवल व्यवहारमें ही उसकी सत्ता है, और उसका द्रष्टा आत्मा चेतन है। दृश्य विनाशी है, चेतन नित्य है। इस प्रकार द्रष्टारूपमें स्थित होकर दृश्य-प्रपंचको अनात्मरूपसे देखो।

× × × ×

इसके बाद यह देखो कि यह दृश्य-प्रपंच स्वप्नद्रष्टाके संकल्पसे उत्पन्न स्वप्न-जगत्‌की भाँति मुझ चेतन आत्माके संकल्पसे मुझमें ही स्थित है। यह सब मेरा ही विलास है। मुझसे भिन्न कुछ भी नहीं है। इसलिये अब दृश्यका अभाव करनेकी आवश्यकता नहीं, दृश्यमात्रमें आत्मबुद्धि करो।

× × × ×

परन्तु याद रखो—जहाँतक अनात्मबुद्धि या आत्मबुद्धिके द्वारा वस्तुका स्वरूप देखकर एकात्मज्ञान किया जाता है, वहाँतक तुम्हारा वह ज्ञान वृत्तिजन्य ही है। अनात्मबुद्धिसे समस्त दृश्य-प्रपंचका निषेध करते-करते जब वृत्ति अभावाकार हो जाती है या आत्मबुद्धिसे समस्त दृश्य-प्रपंचको आत्मरूप देखते-देखते जब वृत्ति भावाकार हो जाती है, तब उसी वृत्तिको 'सूक्ष्म बुद्धि' कहते हैं। इसीसे आत्माका साक्षात्कार होता है, परन्तु यह साक्षात्कार भी वस्तुतः वृत्तिजन्य ही है। यह एक प्रकारकी विशुद्ध ब्रह्माकारवृत्ति ही है।

× × × ×

भगवान् ऐसी वस्तु नहीं जो बुद्धिकी सीमाके अन्दर आ सकें, चाहे वह बुद्धि कितनी ही विशुद्ध क्यों न हो। जहाँ एकमात्र भगवत्-सत्ता ही रह जाती है और ज्ञान-अज्ञान, प्राप्ति-अप्राप्ति, प्रपंचभाव-प्रपंच, निवृत्ति-प्रवृत्ति, साध्य-साधन और परमार्थ-व्यवहार

आदिकी कोई कल्पना किसी रूपमें नहीं रहती। ऐसी वृत्तिहीन स्वरूपस्थितिको ही वास्तविक साक्षात्कार कहा जाता है। परन्तु यह व्याख्या भी केवल समझनेके लिये संकेतमात्र ही है। बुद्धिवृत्तिसे सर्वथा अतीत आदि-मध्यान्तरहित, नित्य एकरस भगवत्तत्त्वकी स्वरूपव्याख्या तो किसी भी अवस्थामें हो ही नहीं सकती। कहनेको अवश्य ही यह कहा जा सकता है कि इस स्थितिमें प्रशान्तात्मा साधक कृतकृत्य हो जाता है, फिर उसके लिये कुछ भी करना या पाना शेष नहीं रह जाता।

गुरु बननेकी चेष्टा मत करो

तुम विद्या-बुद्धिमें, शक्ति-सामर्थ्यमें, बल-पौरुषमें, पद-प्रतिष्ठामें, धन-ऐश्वर्यमें, कला-कौशलमें, सौन्दर्य-माधुर्यमें, संयम-साधनमें, त्याग-वैराग्यमें और ज्ञान-विज्ञानमें कितने ही बड़े क्यों न हो जाओ, भूलकर भी कभी भगवान्के आसनको मत चाह बैठना।

× × × ×

भगवान्की अचिन्त्य शक्तिका तिरस्कार करके जो मनुष्य मोह या अभिमानवश लोगोंके हृदयसे भगवान्के दिव्य और नित्य नामरूपको हटाकर अपने भौतिक और अनित्य नाम रूपको बैठाना चाहता है और भगवान्के बदले उनसे अपने हाड़-मांसके अपावन पुतलेकी पूजा-अर्चा करवाता है, उसका पतन होते देर नहीं लगती!

× × × ×

तुम्हारे अन्दर जो कुछ भी शक्ति है, जो कुछ भी सत्ता-महत्ता है, सब भगवान्से आयी है, भगवान्की दी हुई है। उनकी दी हुई शक्ति-सत्ता-महत्ताको विनयपूर्वक हमेशा ईमानदारीके साथ उन्हींकी सेवामें समर्पण करते रहो। ऐसा करनेसे ये और भी बढ़ेंगी और भी पवित्र होंगी। भगवान्की महत्त्वपूर्ण शक्तियोंका स्रोत तुम्हारी

ओर बह चलेगा और तुम्हें अपने अन्दर लेकर महान् शक्तिशाली बना देगा।

× × × ×

सदा विनम्र रहो। सारे सद्‌गुणों और अखिल ऐश्वर्योंके भण्डार श्रीभगवान्‌के चरणोंमें अपनेको अर्पण करते रहो। तुम्हारे पास कोई भी आवे, उसे सीधा भगवान्‌का नाम बतला दो। तुम्हारी पूजाके लिये कैसा भी बहुमूल्य पदार्थ तुम्हारे सामने आवे, उसे सीधे भगवान्‌के अर्पण करवा दो। ललचा मत जाओ—किसी भी लोभनीय वस्तुको देखकर! ललचाये कि गिरे! तुम तो अपने लिये सबसे अधिक, नहीं-नहीं, एकमात्र लोभनीय मानो श्रीभगवान्‌को ही! और अपने आचरणोंसे, सद्व्यवहारसे, भगवान्‌की दी हुई शक्तिके सदुपयोगसे ऐसा प्रयत्न करो कि जिसमें जगत्‌के नर-नारी श्रीभगवान्‌की ओर झुकें, उनकी भक्ति करें और उनके प्रेमको पाकर कृतार्थ हो जायँ।

× × × ×

जहाँतक हो गुरु बननेकी चेष्टा कभी मत करो, शिष्य ही रहो। इसीमें तुम्हारी भलाई है। कहीं भगवान्‌की प्रेरणासे गुरु बनना पड़े तो सावधान हो जाओ। तुम्हारी जिम्मेवारी और भी गुरुतर हो जाती है। गुरुपनका घमण्ड न करो। सदा-सर्वदा सचेत रहकर निष्कपटभावसे बाहर और भीतरसे अपनी प्रत्येक चेष्टाको शुद्ध, सात्त्विक और भगवत्सेवामयी बना लो। तुम्हारी एक भी चेष्टा—एक भी क्रिया ऐसी नहीं होनी चाहिये जिससे सर्वाराध्य भगवान्‌के प्रति किसीके भी मनमें तनिक-सी भी अमंगलमयी अश्रद्धा उत्पन्न हो। भगवान्‌से सदा प्रार्थना करते रहो और उनकी कृपाके बलपर ऐसा दृढ़ निश्चय रखो, जिससे कभी कोई अनीति-अनाचार तुम्हारे द्वारा बने ही नहीं। शिष्योंको जैसे बनाना चाहते हो, स्वयं पहले अपने आचार-विचारसे, क्रिया और भावनासे वैसे ही बन जाओ। पहले अपने गुरु बनो, फिर दूसरोंके।

× × × ×

भगवान्‌को प्राप्त होनेवाली पूजा-प्रतिष्ठा और मान-बड़ाईसे सदा बचते रहो। जहाँ कोई भी पुरुष, किसी भी स्थितिमें, किसी भी कारणसे भगवान्‌के बदले तुम्हें उनके सिंहासनपर बैठाना चाहे, वहीं तुरन्त दृढ़तापूर्वक विरोध करके उसकी अभिलाषाकी जड़ ही काट डालो। याद रखो, ऐसा विचार ही तुम्हारे पतनका बीज है। देखो, तुम्हारी असावधानी या मूढ़तासे यह बो न दिया जाय। ऐसी विकट भूल न कर बैठना!

॥ श्रीहरिः ॥

परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी)-के अनमोल प्रकाशन

कोड	पुस्तक
820	भगवच्चर्चा (ग्रन्थाकार)
050	पदरत्नाकर
049	श्रीराधा-माधव-चिन्तन
058	अमृत-कण
332	ईश्वरकी सत्ता और महत्ता
333	सुख-शान्तिका मार्ग
343	मधुर
056	मानव-जीवनका लक्ष्य
331	सुखी बननेके उपाय
334	व्यवहार और परमार्थ
514	दुःखमें भगवत्कृपा
386	सत्संग-सुधा
342	संतवाणी—ढाई हजार अनमोल बोल
347	तुलसीदल
339	सत्संगके बिखरे मोती
349	भगवत्प्राप्ति एवं हिन्दू-संस्कृति
350	साधकोंका सहारा
351	भगवच्चर्चा
352	पूर्ण समर्पण
353	लोक-परलोक-सुधार
354	आनन्दका स्वरूप

कोड	पुस्तक
355	महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
356	शान्ति कैसे मिले?
357	दुःख क्यों होते हैं ?
348	नैवेद्य
337	दाम्पत्य-जीवनका आदर्श
336	नारीशिक्षा
340	श्रीरामचिन्तन
338	श्रीभगवन्नाम-चिन्तन
345	भवरोगकी रामबाण दवा
346	सुखी बनो
341	प्रेमदर्शन
358	कल्याण-कुंज
359	भगवान्‌की पूजाके पुष्प
360	भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं
361	मानव-कल्याणके साधन
362	दिव्य सुखकी सरिता
363	सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ
364	परमार्थकी मन्दाकिनी
366	मानव-धर्म
526	महाभाव-कल्लोलिनी
367	दैनिक कल्याण-सूत्र
369	गोपीप्रेम

कोड	पुस्तक
368	**प्रार्थना—प्रार्थना-पीयूष**
370	**श्रीभगवन्नाम**
373	**कल्याणकारी आचरण**
374	**साधन-पथ**—सचित्र
375	**वर्तमान शिक्षा**
376	**स्त्री-धर्म-प्रश्नोत्तरी**
377	**मनको वश करनेके कुछ उपाय**
378	**आनन्दकी लहरें**
380	**ब्रह्मचर्य**

कोड	पुस्तक
381	**दीन-दुःखियोंके प्रति कर्तव्य**
379	**गोवध भारतका कलंक एवं गायका माहात्म्य**
382	**सिनेमा मनोरंजन या विनाशका साधन**
344	**उपनिषदोंके चौदह रत्न**
371	**राधा-माधव-रससुधा-(षोडशगीत)** सटीक
384	**विवाहमें दहेज—**
809	**दिव्य संदेश**..........

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित कुछ साधन-भजनकी पुस्तकें

कोड	पुस्तक
052	**स्तोत्ररत्नावली**—सानुवाद
819	**श्रीविष्णुसहस्रनाम—** शांकरभाष्य
207	**रामस्तवराज**—(सटीक)
211	**आदित्यहृदयस्तोत्रम्**
224	**श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र**
231	**रामरक्षास्तोत्रम्**
1594	**सहस्रनामस्तोत्रसंग्रह**
715	**महामन्त्रराजस्तोत्रम्**
054	**भजन-संग्रह**
140	**श्रीरामकृष्णलीला-भजनावली**
142	**चेतावनी-पद-संग्रह**
144	**भजनामृत—** ६७ भजनोंका संग्रह
1355	**सचित्र-स्तुति-संग्रह**
1214	**मानस-स्तुति-संग्रह**
1344	**सचित्र-आरती-संग्रह**
1591	**आरती-संग्रह**—मोटा टाइप
208	**सीतारामभजन**
221	**हरेरामभजन—** दो माला (गुटका)
225	**गजेन्द्रमोक्ष**
1505	**भीष्मस्तवराज**
699	**गंगालहरी**
1094	**हनुमानचालीसा—** भावार्थसहित
228	**शिवचालीसा**
232	**श्रीरामगीता**
851	**दुर्गाचालीसा**
236	**साधकदैनन्दिनी**